केनोपनिषद्

मन्त्र, पदच्छेद, अन्वय, शब्द, शब्दार्थ, भावार्थ,
व्याख्या और अंग्रेजी अनुवाद सहित

यमुनाप्रसाद त्रिपाठी

केनोपनिषद्
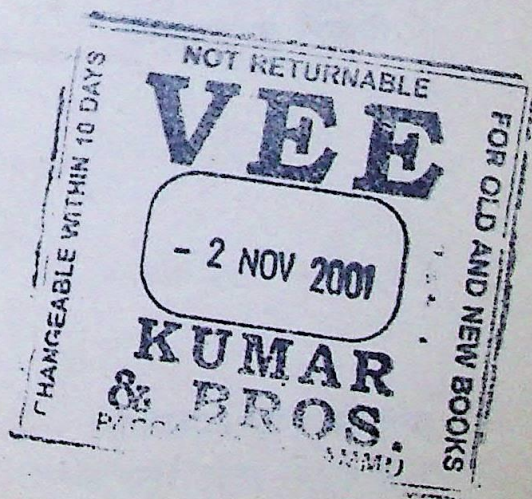
Deepali

केनोपनिषद्

मन्त्र, पदच्छेद, अन्वय, शब्द, शब्दार्थ, भावार्थ,
व्याख्या और अंग्रेजी अनुवाद सहित

अनुवादक
यमुनाप्रसाद त्रिपाठी

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कलकत्ता, बंगलौर,
वाराणसी, पुणे, पटना

समर्पण

यह पुस्तक स्वर्गीय श्री पं० श्रीवास पाण्डेय जी

को,

जिनकी कृपा से यह तैयार हुई है,

समर्पित है

भूमिका

इस उपनिषद् का नाम केनोपनिषद् है । इस उपनिषद् के पहिले मन्त्र का पहिला शब्द 'केन' है । इसी 'केन' शब्द के कारण इस उपनिषद् का नाम केनोपनिषद्' रक्खा गया है । इसी तरह 'ईशोपनिषद्' में 'ईश' शब्द के आदि में होने के कारण उस उपनिषद् का नाम 'ईशोपनिषद्' पड़ा ।

इस उपनिषद् में आदि और अन्त में शान्तिपाठ है । यही शान्तिपाठ सामवेदीय उपनिषदों में प्रायः सर्वत्र है । इस शान्तिपाठ में ईश्वर से प्रार्थना की गयी है कि शरीर के सब अंग पुष्ट हों । ईश्वर का स्मरण न भूलें । ईश्वर हमको न भूले । जिन धर्मों का वर्णन उपनिषदों में है वे सब प्राप्त हो जांय ।

इस उपनिषद् में चार खण्ड हैं । प्रथम खण्ड में आठ मन्त्र हैं । जिनमें से अन्तिम पाँच के तृतीय तथा चतुर्थ पाद 'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' इन सब मन्त्रों में एक ही है । इसका अर्थ यह है कि उसी को तुम ब्रह्म समझो तथा यह जिसकी उपासना की जाती है वह ब्रह्म नहीं है । एक प्रकार से उपासना की विधि कुछ और ही है—ऐसा समझ पड़ता है । इससे सम्भव है कि कुछ लोगों के मन में यह भावना पैदा हो कि इस उपनिषद् में सगुण उपासना का निषेध किया गया है । परन्तु विचार करने से ऐसी बात नहीं मालूम होती । चौथे खण्ड के छठे मन्त्र में 'उपासितव्यम्' यह स्पष्ट रूप से आया है । उपासना का क्या रूप होना चाहिए ? यह बात इस उपनिषद् में दिखलाई गई है ।

दूसरे खण्ड में परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान होने की कठिनता स्पष्ट दिखाई गई है और यह बात भी कही गई है कि मनुष्य यदि इसी जीवन में

परब्रह्म परमात्मा को जान सका तो सबसे बड़ा लाभ हुआ और यदि न जान सका तो सबसे बड़ी हानि होगी।

तीसरे खण्ड में आख्यायिका के रूप में यह कहा गया है कि अग्नि, वायु और इन्द्र जो सबसे बड़े देवता हैं वे भी परब्रह्म परमात्मा को न जान सके। अग्नि और वायु तो हताश होकर चुपचाप रह गये; परन्तु इन्द्रदेव ने उमादेवी से पूछ कर ज्ञान प्राप्त किया।

चौथे खण्ड में उमादेवी ने इन्द्र को यह बतलाया कि जो कुछ तुम्हारी बिजय होती है और जिससे तुम महिमा को प्राप्त करते हो, वह सचमुच उसी यक्ष, जो परब्रह्म परमात्मा है, की विजय का फल है। तुम्हारा इसमें कोई श्रेय नहीं है। किसी भी प्रकार इसमें तुम्हारी प्रशंसा की बात नहीं है। तुमको घमंड न करना चाहिए।

इस आख्यायिका के द्वारा ऋषि इस बात को दिखलाते हैं कि सभी देवताओं में अग्नि बड़े हैं। वायु उनसे भी बड़े हैं और इन्द्र सबसे बड़े हैं। आगे चलकर ऋषि परब्रह्म परमात्मा के अधिदैवत ज्ञान को इस प्रकार समझाते हैं कि जैसे बिजली चमकती है और उसके प्रकाश से दृश्य जगत् प्रकाशित हो जाता है तथा उसका संस्कार कुछ समय तक रहता है। और फिर बिजली चमकती है और दृश्य जगत् फिर प्रकाशित हो जाता है, इसी प्रकार यह कार्य होता रहता है। उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा के प्रकाश से यह संसार प्रकाशित होता रहता है। उसका रूप बदलता रहता है। तथा दूसरी विधि इस प्रकार बतलाते हैं कि जैसे आँख खोलने से बाह्य जगत् प्रकाशित हो जाता है और पलक बन्द होने पर छिप जाता है उसी प्रकार भगवान् के सम्बन्ध से यह जगत् प्रकाशित हो जाता है और जब उनका सम्बन्ध भूल जाता है तो यह जगत् विलीन हो जाता है।

अध्यात्म ज्ञान के सम्बन्ध में इस उपनिषद् में कहा गया है कि जैसे मन परब्रह्म परमात्मा तक पहुँचता और लौटता हुआ सा मालूम होता है तथा जिस प्रकार मनुष्य के संकल्प से बार-बार मन को परब्रह्म परमात्मा का स्मरण

करना पड़ता है और वहाँ से अलग होने पर भक्त फिर उसी मन को वहाँ जाने के लिए प्रेरित करता है।

छठे मन्त्र में ऋषि अपने सिद्धान्त को निश्चित रूप से इस प्रकार प्रकट करते हैं कि परब्रह्म परमात्मा की पूजा चाहे जिस प्रकार की जाय; परन्तु सदा भावना इस प्रकार से होनी चाहिये कि वह परब्रह्म परमात्मा केवल आनन्दमय है। जो मनुष्य इस प्रकार भगवान् की उपासना करता है वह सबका प्रिय हो जाता है और प्रिय बना रहता है।

सातवें मन्त्र में शिष्य के पूछने पर गुरु अथवा ऋषि ने यह कहा कि उपनिषद् का ज्ञान तो पूरा हो गया परन्तु आठवें मन्त्र में फिर आगे बतलाते हैं कि इस परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान की प्राप्ति के लिए मनुष्य को कर्म करना चाहिये परन्तु वह कर्म शास्त्रविहित हो। कर्म के साथ तपस्या भी करनी चाहिये ताकि इन्द्रियाँ काबू मे रहें। शास्त्र का अर्थ यह है कि वेद सबके मूल हैं। उनको समझने के लिये ६ अंग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष हैं। इनके ज्ञान के बिना वेदों का तात्पर्य ठीक-ठीक समझ में नहीं आता। अनेक आर्ष ग्रन्थों में 'परोक्षप्रिया इव हि देवाः' ऐसा कहा गया है (जैसे ऐतरेयोपनिषद, तृतीय खण्ड, मन्त्र १४ में) इसका अर्थ यह है कि देवताओं को परोक्ष रहना प्रिय है, प्रत्यक्ष होना प्रिय नहीं है। संसार में भी आदर करने के लिये लोग दूसरों को उनके नाम की उपाधि द्वारा सम्बोधित करते हैं। जैसे त्रिपाठी जी, मिश्र जी इत्यादि। श्रीमद्भागवत में भी ऐसा ही कहा गया है कि वेदों का तात्पर्य शब्दार्थों में छिपा रहता है। ढूंढने से ही मिलता है। अस्तु वेदों को समझने के लिए इन छः अंगों के जानने की अत्यन्त आवश्यकता है। इनके बिना वेदों का अर्थ ठीक-ठीक नहीं निकल सकता। जैसे श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है– बुद्धि तीन प्रकार की होती है, सत्त्वगुणी जो यथार्थ रूप से समझती है, रजोगुणी जो ठीक-ठीक नहीं समझती और तमोगुणी जो उल्टा यानि धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझती है। (गीता अध्याय १८, श्लोक ३०,

३१, १२)। ऋषियों ने उपनिषद्, ब्राह्मण तथा और भी आर्ष ग्रंथों में वेदों का तात्पर्य समझाने का प्रयत्न किया है। ऐसे ग्रंथों में मनुस्मृति, पुराण तथा दर्शन इत्यादि भी आ जाते हैं। वेदों के समझने के लिये सत्य का आचरण भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जो सत्यनिष्ठ नहीं है वह सत्य को समझ ही नहीं सकता। वेद सत्य के अर्थ के प्रकाशक हैं। वे उनके लिये अगम्य है जो सत्यनिष्ठ नहीं हैं।

सत्य क्या है और असत्य क्या है; इसकी भी मीमांसा आसान नहीं है। जैसा कि रामायण में कहा गया है कि 'जानहि झूठ न सांच'। सत्य क्या है इसे जानने के लिए आप्त पुरुषों, यानी ऐसे पुरुष जिन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है, का वचन सुनना चाहिये।

अन्तिम मन्त्र में इस उपनिषद् में यह कहा गया है कि जो इस उपनिषद् को इस प्रकार ठीक-ठीक जानता है वह पाप से रहित होकर सबसे श्रेष्ठ अनन्त स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है।

श्री स्वामी शंकराचार्य जी ने अनेक उपनिषदों की व्याख्या की है उनमें से एक यह भी है। परन्तु यह एक ऐसी उपनिषद् है कि जिसकी टीका उनको दुबारा करने की आवश्यकता जान पड़ी। एक टीका का नाम पद-भाष्य है और दूसरी टीका का नाम वाक्यभाष्य है। यह केनोपनिषद् सामवेद से सम्बन्ध रखने वाली उपनिषद् है। दूसरी उपनिषद् जो सामवेद से सम्बन्ध रखती है उसका नाम छान्दोग्य उपनिषद् है। इन दोनों उप-निषदों पर स्वामी शंकराचार्य ने टीका की है। सामवेद के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण जी का वचन है 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' (गीता अ० १०, मं० २२) अर्थात् मैं वेदों में सामवेद हूँ। सामवेद के लिए प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है 'स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम्' (पञ्चम प्रश्न; मन्त्र ५) अर्थात् वह पाप से रहित मनुष्य सामवेद की श्रुतियों द्वारा ब्रह्मलोक ले जाया जाता है। इसी भाव को फिर प्रश्नोपनिषद् के पञ्चम प्रश्न के सातवें मन्त्र में कहा गया है। अतः यह केनोपनिषद् बहुत गूढ़, गम्भीर और रहस्यमय है। केनोपनिषद् सामवेद की तलवकार शाखा के उपनिषद् ब्राह्मण में है।

'शास्त्र सुचिन्तित पुनि-पुनि देखिय' यह तुलसीकृत रामायण में अरण्य-काण्ड की अर्धाली है : अर्थात् जिस शास्त्र का अच्छी तरह से विचार किया है उस पर भी बार-बार और खूब सोचना और विचार करना चाहिये। जैसे गाय के दूध को दुहकर, छान कर तथा अच्छी तरह से गरम कर, दही जमा कर मथने से पहिले नवनीत निकलता है फिर गरम करने से शुद्ध घी निकल आता है और उस घी का दीपक जलाने से स्वयं अपने को प्रकाश मिलता है तथा दूसरे भी उस प्रकाश से लाभ उठाते हैं; इसी प्रकार जो उत्तम शास्त्र को पढ़कर धारण करते हैं, तथा उस पर विचार कर एवं मथ कर सच्चे ज्ञान को प्राप्त करते हैं उससे वे स्वयं अपने को आनन्दित करते हैं, और मनःप्रसाद द्वारा दूसरों को भी आनन्दित करते हैं, उसी प्रकार इसे तथा और भी आर्ष ग्रन्थों को पढ़कर अच्छी तरह सोचना, विचारना और मनन करना चाहिये। टीका इत्यादि से पथ-प्रदर्शक का काम तो लें; परन्तु काम अपनी ही आँखों से लें, उनकी आँखों से नहीं। 'मूल' समझें और टीका को महज टीका ही समझना चाहिये। मूल में असत्य की छाया में टीकाओं में मतभेद हो सकता है और होता है। अस्तु प्रार्थना है कि जो महाशय भी इसको पढ़ें वे इसकी टीका में दोष देखकर यह न समझ लें कि मूल में भी दोष है।

अब थोड़ा-सा प्रकाश इस बात पर डालना चाहता हूँ कि यह पुस्तक कैसे तैयार होकर आपके सामने आई। इसमें मेरा किञ्चित्मात्र भी श्रेय नहीं है। मैं तो हिन्दी बहुत कम जानता हूँ और संस्कृत का तो कहना ही क्या। मेरी अवस्था इस समय छाछठ वर्ष की है। मैंने बत्तीस वर्ष पुलिस विभाग में सर्विस की और अप्रैल सन् १९६२ में रिटायर हुआ। मेरे पिता जी भी पुलिस विभाग में काम करते थे और वे ३० वर्ष काम करने के बाद सन् १९२२ में रिटायर हुए। उस समय मैं नवें दर्जे में अंग्रेजी पढ़ता था। उस जमाने में उर्दू अदालत की जबान थी। इससे नोकरी पेशा लोग अपने लड़कों को उर्दू-फारसी पढ़ाते थे। मेरी भी शुरू तालीम मोलवी साहेब के जेर तहत हुई और फारसी के ग्रन्थ करीमा व खालिक़बारी जबानी याद

कराये गये तथा उर्दू लिखने की मश्क़ की गई। मैंने दसवें तक उर्दू-फ़ारसी ही अंग्रेजी के साथ पढ़ी। मेरी बड़ी बहन हिन्दी पढ़ती थी। उन्हीं के संसर्ग में हिन्दी की वर्णमाला बचपन में सीखी और छठवें से दसवें दर्जे तक हिन्दी सेकेण्ड फ़ारम के तौर पर पढ़ी। मेरे श्वसुर स्वर्गीय पं० श्यामसुन्दर ब्रह्मचारी प्रयागराज के निकट जयन्तीपुर ग्राम के थे। वे बड़े धुरन्धर वैयाकरण और संस्कृत के विद्वान् थे। उनको पूरा महाभाष्य कण्ठस्थ था। और उसका वे पाठ किया करते थे। सन् १९४२ में मैं उनके संसर्ग में आया। और उन्होंने बहुत कोशिश की कि मैं संस्कृत उनसे पढ़ लूं; परन्तु मेरी इस तरफ़ बिल्कुल प्रवृत्ति न हुई। मैं सन् १९४९ से १९५० तक काशी में सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस रहा; जो विद्या का भण्डार और विद्वानों का केन्द्र है। लेकिन काशी में रहते मैंने न तो विद्या ही पढ़ी और न विद्वानों का सम्पर्क मुझसे काशी में हुआ। जब सन् १९५१ से मैं सी० आई० डी० विभाग में सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस होकर आया, तो श्री हृदयनारायण जी के सत्संग से रामायण पढ़ने की तरफ प्रवृत्ति हुई और मैं रामायण की पाँच चौपाईयों का रोज पाठ करने लगा। बस यहीं से काया पलट गई।

एक दिन रामायण के पाठ में यह चौपाई पढ़ी 'सोचिय विप्र जो वेद विहीना' बस बड़ी ग्लानि हुई कि ब्राह्मण होते हुए वेद नहीं जानते। उसी दिन स्वर्गीय श्री पं० तेजोनारायण जी पाण्डे शास्त्री,जो कान्यकुब्ज कालेज में संस्कृत टीचर थे और मेरे यहाँ आते जाते थे,से मैंने कहा कि मैं वेद पढूँगा। उन्होंने राय दी कि मैं पहिले बाल्मीकि रामायण पढ़ूं और थोडा व्याकरण पढ़ूं। बस उसी दिन पुस्तकें लाया और पढ़ाई शुरू कर दी। यह सन् १९५२ की बात है। श्री पंडित तेजोनारायण जी से यजुर्वेद थोड़ा पढ़ा तो बहुत सी बातें मालूम हुईं। श्री पं० तेजोनारायण जी के पिता श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती, जो आर्य समाज के संचालक थे, के शिष्य थे और वे बड़े भारी विद्वान् थे। श्री पं० तेजोनारायण जी भी कई विषयों के शास्त्री थे और बहुत बड़े विद्वान् थे। उन्होंने मुझसे कहा कि उनको वेद के स्वर का ज्ञान

जैसा होना चाहिए, नहीं है। इसलिए श्री प० गयादीन जी यजुर्वेदी जिनको सम्पूर्ण यजुर्वेद सस्वर कंठ है, की सेवा में उपस्थित होकर यजुर्वेद की रुद्री सस्वर पढ़ी। उस समय तक मुझको यह भी ज्ञान नहीं था कि मेरा वेद सामवेद है।

सन् १९५४ में कुम्भ मेला प्रयाग का मैं सीनियर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस इन्चार्ज था। उस साल कुम्भ मेले में जो दुर्घटना हुई उससे मेरी प्रवृत्ति ब्रह्म-तत्त्ववेत्ता योगिराज श्री देवरहवा बाबा जी के सम्पर्क से कुछ धार्मिक हुई। काशी में पंडित नारायण दत्त पाण्डे जो मेरे रिश्तेदार हैं, के यहाँ सरयूपारीण वंशावली इसी साल देखने का मौका मिला जिससे मालूम हुआ कि मैं सामवेदी हूँ। बस अब धुन लग गई कि सामवेद पढ़ा जाय। लखनऊ में उस समय कोई सामवेद के जानने वाले न थे। बहुत जाँच करने पर मालूम हुआ कि बडौरा ग्राम जिला उन्नाव में श्री पं० शिवसेवक त्रिपाठी सामवेदी हैं। उनसे सामवेद पढ़ना शुरू किया; लेकिन कुछ प्रगति न कर सका। फिर भी तलाश रही कि कोई अच्छे सामवेद के ज्ञाता मिलें तो सामवेद पढ़ूं। इसी दरमियान में श्री सत्यदेव ब्रह्मचारी जी, मेहदावल, जिला बस्ती से मैंने जिकिर किया तो उन्होंने कहा कि वे सामवेदी ब्राह्मण, जो सामवेद अच्छी तरह जाते हों, का इन्तजाम कर देंगे और श्री सत्यदेव ब्रह्मचारी जी की ही कृपा से श्री पंडित ऋषिशंकर त्रिपाठी अग्निहोत्री सामवेदाचार्य से परिचय हुआ। वे वक्त पाकर लखनऊ पधारे तथा मुझको सामवेद पढ़ाना शुरू किया। पुलिस विभाग में नौकरी करते हुए ज्यादा समय न मिल सका, लेकिन जो कुछ थोड़ा ज्ञान सामवेद के गान का हुआ वह श्री पं० ऋषिशंकर त्रिपाठी अग्निहोत्री सामवेदाचार्य की कृपा का नतीजा था। मैंने और मेरे प्रथम संस्कृत गुरु पंडित तेजोनारायण पाण्डे जी ने साथ साथ उनसे सामवेद पढ़ा।

फिर श्री ग्रिफिथ के सामवेद का अंग्रेजी अनुवाद और कई टीकायें हिन्दी में सामवेद की पढ़ी। सन् १९५८-५९ में श्री पं० तेजोनारायण जी की कृपा से

सामवेद की रुद्री के मन्त्रों का हिन्दी अनुवाद व श्री ग्रिफिथ की पुस्तक से अंग्रेजी अनुवाद संकलित करके इसलिए लिखा कि मन्त्रों का बोध हो जाय। श्री सत्यदेव ब्रह्मचारी जी ने इसको देखा, वे बड़े प्रसन्न हुए। इसी दरमियान में ईश्वर की ही प्रेरणा से मैंने अग्निहोत्र ग्रहण किया और सामवेदी पद्धति से प्रायश्चित्त करके अग्निग्रहण किया। इसकी पूर्णरूप से जानकारी के लिए संस्कृत की सामवेदी पद्धति का श्री पं० श्रीवास पाण्डे जी से अनुवाद कराया और मैंने लिखा। बस, फिर तो आभास हुआ कि अगर कोई ग्रन्थ पढ़ना हो तो उसका हिन्दी व अंग्रेजी में अनुवाद लिखा जाय तो पूर्ण रूप से ज्ञान हो जावेगा।

अप्रैल सन् १९६२ में पुलिस विभाग से रिटायर होने पर इच्छा हुई कि सामवेदी उपनिषदों का अध्ययन किया जाय। पं० श्रीवास पाण्डे जी ने कृपा करके अपना बहुमूल्य समय दिया और केनोपनिषद् की पढ़ाई शुरू की गई। उपनिषद् के गूढ़ विषय को समझने के लिए मन्त्रों के अर्थ करने के लिये यह जरूरी था कि मन्त्रों का पदच्छेद, अन्वय, शब्दार्थ, भावार्थ और व्याख्या लिखकर बोध किया जाय। इसीलिए यह शुरू किया गया, शुरू करने के बाद यह समझ में आया कि अगर मन्त्रों के अर्थ का अंग्रेजी में अनुवाद किया जाय तो ज्यादा समझ में आवेगा; क्योंकि मैंने ३१ वर्ष सरकारी पुलिसविभाग में नौकरी करके अंग्रेजी में काम किया तथा सब लिखापढ़ी और पत्र-व्यवहार अंग्रेजी में ही करता रहा। जान पड़ा कि अगर अंग्रेजी में बोला और सोचा जाय तो ज्यादा बोध होगा। लेहाजा प्रयास करके अंग्रेजी अनुवाद भी किया गया। परिश्रम करके उपनिषद् के सब मन्त्रों का पदच्छेद, अन्वय, शब्दार्थ, भावार्थ, व्याख्या और अंग्रेजी अनुवाद पं० श्रीवास पाण्डे जी की असीम कृपा से लिखा गया।

कई विद्वानों और महानुभावों ने केनोपनिषद् के अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद किए हैं। इनमें से अंग्रेजी के अनुवाद डाक्टर राधाकृष्णन्, स्वामी गम्भीरानन्द जी, पंडित गयाप्रसाद जी, स्वामी शर्वानन्द जी और श्री अरविन्द

ने किए हैं और हिन्दी के अनुवाद स्वर्गीय पं० श्री पाद दामोदर सातबलेकर व स्वामी दयानन्द जी ने किए हैं, समझने और हृदयंगम करने के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं।

यह पुस्तक अपने पढ़ने, समझने और मनन करने के लिए स्वान्तः सुखाय लिखी गई थी, परन्तु मेरे कुछ मित्रों ने इसको देखकर आग्रह किया कि लोककल्याणार्थ और अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्तियों के लिए इस पुस्तक को छपवा दिया जाय। उन्हीं मित्रों की प्रेरणा और ईश्वर की कृपा का फल है कि यह पुस्तक आप के सामने है।

पं० श्रीवास पाण्डे जी, बी० ए०, एल० एल० बी०, आत्मज श्री पण्डित ब्रह्मानन्द जी पाण्डे का जन्मस्थान ग्राम शिवपुरी, जिला रायबरेली है। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। आपने १९२१ ई० में कानून की परीक्षा पास करके वकालत शुरू की और प्रतापगढ़ तथा लखनऊ में १९४१ ई० तक वकालत करते रहे सन् १९४१ से आप वकालत छोड़कर वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे। आपने रामायण, गीता, धर्मशास्त्र, पुराण, वेद और उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन किया है और उनको खूब समझा है। श्रीमद्भगवद्गीता, यजुर्वेद, योगदर्शन और रामायण तो आपको जबानी याद थे। सन् १९६९ ई० में आपका स्वर्गवास हो गया।

इस पुस्तक में जो कुछ लिखा है यह श्री पं० श्रीवास पाण्डेय जी की ही कृपा का फल है, मेरा कुछ नहीं है। मेरा ज्ञान तो इतना भी नहीं है कि शुद्ध हिन्दी भी लिख सकूं।

महेशगंज
श्रावणी पूर्णिमा संवत् २०२९
२४ अगस्त सन् १९७२ ई०

यमुनाप्रसाद त्रिपाठी

केनोपनिषद् का सारांश

केनोपनिषद में ऋषि ने यह दर्शाया है कि ब्रह्म क्या है। पहिले यह समझाया है कि ब्रह्म मन का प्रेरक है और वही इन्द्रियों को विषयों की ओर ले जाता है। कान का सुनना, आंख का देखना, वाणी का बोलना, प्राण का प्राणन क्रिया करना परब्रह्म परमात्मा द्वारा ही होता है। वह ब्रह्म आँखों से देखा नहीं जा सकता, वाणी से उसका वर्णन नहीं हो सकता, कान से उसे सुन नहीं सकते और ज्ञान से भी उसको जान नहीं सकते। जो लोग कहते हैं कि वे ब्रह्म को जान गये हैं। वे ठीक नहीं कहते हैं। जो कहते हैं कि ईश्वर ज्ञान द्वारा नहीं जाना जा सकता वे ही ठीक कहते हैं। जिस ज्ञान के द्वारा वस्तु का ज्ञान होता है उस ज्ञान को जो ब्रह्म का स्वरूप जानता है वही यथार्थ जानता है। जो मनुष्य ब्रह्म जो जान लेता है उसका कल्याण हो जाता है और जो नहीं जान पाता वह आवागमन में फंसा रहता है।

अहंकार मनुष्य को गिराता है इससे अहंभाव को न आने देना चाहिए। जो भी करे उसको ईश्वर की प्रेरणा से ही किया हुआ माने। अपने कर्तृत्व के अहं भाव को छोड़ दे। ईश्वर को बाहरी इन्द्रियों से न जानने की कोशिश करके अन्तःकरण से जानने की कोशिश करनी चाहिए। ऐसा करने पर एक क्षण के लिये ईश्वर का आभास होगा लेकिन वह बिजली की चमक की तरह लुप्त हो जाएगा। इसी तरह बार-बार जानने का प्रयत्न करने पर थोड़ी-थोड़ी देर के लिये ब्रह्म का ज्ञान होगा और इसका अभ्यास करने पर यह देर तक रहेगा। फिर और अभ्यास व प्रयास करने पर सतत होने लगेगा। यही ध्येय है। इसी उपासना व भजन करने से शान्ति प्राप्ति होती है। और शान्ति प्राप्त होने पर अहिंसा में प्रतिष्ठा हो जाती है। सम भाव हो जाता है। तप और स्वाध्याय से इस ज्ञान के प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

केनोपनिषद् का तात्पर्य

केन उपनिषद् का तात्पर्य यह समझ पड़ता है कि मनुष्य में यह अहंकार-बुद्धि कि मैंने यह किया, यह कर सकता हूँ और यह करूँगा इत्यादि अज्ञान और अहंकार के कारण हैं। सत्य यह है कि परब्रह्म परमात्मा की प्रेरणा से ही मनुष्य सब करता है। उसी की इच्छा से सफलता या असफलता, सम्पत्ति या विपत्ति, यश या अपयश होत हैं। इस सत्य के ज्ञाब की प्राप्ति का उपाय उपासना है। उपास्य परब्रह्म परमात्मा परमानन्द स्वरूप है। इस उपासना को तपस्या, इन्द्रियदमन और कर्म के द्वारा प्राप्त और प्रतिष्ठित किया जा सकता है। कर्म क्या करना चाहिए इसके लिए वेद प्रमाण है। वेद समझने के लिए शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन छः अंगों का ज्ञान आवश्यक है और आप्त वचन का भी जो सत्य के नाम से कहे जाते हैं जैसे इतिहास, पुराण आदि।

केनोपनिषद् का हिन्दी भावार्थ

शान्ति पाठ

हमारे सभी अङ्ग, वाणी, आँख, कान; शारीरिक, मानसिक एवं बुद्धि आदि बल, सारी इन्द्रियाँ, ये सब पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो जाँय। सभी उपनिषद् एक मत से परब्रह्म परमात्मा का ही प्रतिपादन करते हैं। भगवान्! आप ऐसी कृपा करें कि मैं उस परब्रह्म परमात्मा अर्थात् आपका तिरस्कार न करूं। उसी प्रकार भगवान्! आप भी मुझे भूल न जांय, मेरा त्याग न करें। सारांश यह है कि मेरा किसी प्रकार भी निराकरण न होवे और कभी न होवे। तब उस परब्रह्म परमात्मा में चित्त के पूर्ण रूप से लग जाने पर तथा अपने चित्त के और सब वस्तुओं से वैराग्य हो जाने पर जिन धर्मों का वर्णन उपनिषदों में किया है वे सब मुझको प्राप्त हों, सभी मेरे अङ्ग हो जांय। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

प्रथम खण्ड

किसकी इच्छा से यानी किसका भेजा हुआ अर्थात् किसकी प्रेरणा से मन अपने विषय में आ जाता है। यह मुख्य श्रेष्ठ तथा प्रथम प्राण किससे युक्त होकर यानी किसकी प्रेरणा से चलता है? मनुष्य जो इस वाणी को बोलता है, वह किसकी इच्छा से बोलता है, उसका मूल प्रेरक कौन है और वह कौन सा देवता है जो आँख और कान को अपने-अपने विषयों में लगाता है॥ १॥

चूंकि वह परब्रह्म परमात्मा कानों का भी कान है, अर्थात् जिसके बिना विज्ञानात्मा जीव भी नहीं सुन सकता, जो मन का भी मन है अर्थात् जिसके बिना मन भी अपना काम नहीं कर सकता, अवश्य ही वही परब्रह्म परमात्मा वाणी की भी वाणी है, वहीं प्राणों का प्राण है, और आँखों की आँख है।

अतः धैर्यवान् पुरुष अर्थात् जो पुरुष कभी धीरज को नहीं छोड़ सकते, वे संसार के उपर्युक्त श्रोत्रादि विषयों का ममत्व छोड़ देते हैं। इस बात का अभिमान कभी नहीं करते कि मैं सोचता हूँ, इत्यादि अर्थात् जो इन भावनाओं को त्याग देते हैं वे इस संसार से जाने के बाद अर्थात् मरने पर अमर हो जाते हैं ॥ २ ॥

वहाँ अर्थात् उस परब्रह्म परमात्मा तक आँख नहीं जाती। वह आँख का विषय नहीं है। उसको आँख नहीं देख सकती। वाणी की भी गति वहाँ तक नहीं है, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। 'नेति नेति' कह कर शान्त हो जाती है। मन भी उसको नहीं सोच सकता, मन से भी वे परे हैं। न तो उसको हम जानते हैं और न पढ़-लिखकर और न सोच-विचार करके ही जान सकते हैं। हम लोग उसका उपदेश अपने शिष्यों से किस प्रकार से करें, उसको हम नहीं जानते क्योंकि जितना कुछ भी जाना हुआ है वह परब्रह्म परमात्मा उस सबसे दूसरा ही है एवं वह परब्रह्म परमात्मा जो कुछ नहीं जाना हुआ है, जिसको कोई भी नहीं जानता, उस सब के ऊपर है वह सबसे परे है जिन महात्माओं ने उस परब्रह्म परमात्मा के सम्बन्ध में हम लोगों को विशेष रूप से समझाया है उन पूर्व पुरुषों से ऐसा ही सुना है ॥ ३ ॥

वाणी जिसका कि पूर्ण रूप से वर्णन करके पार नहीं पा सकती, इतना ही नहीं वरन् जिसके कारण वह वाणी बोली जाती है अथवा यों कहिए कि जो परब्रह्म परमात्मा वाणी को बोलने के लिए विवश करता है उसी को तुम ऐसा समझो कि वह परब्रह्म परमात्मा है तथा संसार में साधारण लोग जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि हम अभी वर्णन कर चुके हैं ॥ ४ ॥

मन के द्वारा संसार के लोग जिसका मनन, संकल्प अथवा निश्चय नहीं कर सकते। विद्वान् लोग मन को उस चैतन्य परब्रह्म परमात्मा के द्वारा विषयीकृत अर्थात् व्याप्त बतलाते हैं। उसी परब्रह्म परमात्मा को तुम परब्रह्म

परमात्मा समझो तथा साधारण संसारी लोग जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है ।। ५ ।।

मनुष्य जिस परब्रह्म परमात्मा को आँख से नहीं देख सकते बल्कि जिसके द्वारा मनुष्य इन आँखों के विषय रूप को देखते हैं उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानो और साधारण मनुष्य जिसको परब्रह्म परमात्मा समझ कर पूजते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि वर्णन हो रहा है ।। ६ ।।

मनुष्य उस परब्रह्म परमात्मा को कान के द्वारा नहीं सुन सकते बल्कि मनुष्य जिसके द्वारा श्रोत्र अर्थात् शब्द को कान के द्वारा सुना हुआ मानते हैं उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानो तथा साधारण मनुष्य संसार में जिसको परब्रह्म परमात्मा समझते हैं और जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि वर्णन हो रहा है ।। ७ ।।

वह मनुष्य प्राण के द्वारा प्राणन नहीं करता यानी साँस नहीं लेता अर्थात् गन्धवान् वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त नहीं करता बल्कि जिसके द्वारा प्राण अपनी प्राणन क्रिया यानी सांस लेता है तथा गन्ध का उपभोग करने के लिए विवश किया जाता है उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानो और साधारण मनुष्य संसार में जिसकी उपासना परब्रह्म परमात्मा समझ कर करते हैं वह ब्रह्म नहीं है जिसका कि वर्णन किया जा रहा है । ८ ।।

द्वितीय खण्ड

यदि तुम मानते हो कि मैं ब्रह्म को भली प्रकार जानता हूँ, तो जो कुछ तुम जानते हो वह सब थोड़ा ही है । इस ब्रह्म के जिस रूप को तुम जानते हो और इसका जो स्वरूप तुम हो और जो देवताओं में है वह तो तुम्हारे लिए विचारणीय ही है । इस प्रकार आचार्य के कहने पर शिष्य ने जो कुछ सोच विचार करके कहा कि अब मैं ब्रह्म के स्वरूप को जान गया हूँ; ऐसा मैं समझता हूँ ।। १ ।।

मैं यदि इस बात को मानूं कि मैं ब्रह्म को मान गया। यह बात ठीक है यह मैं नहीं मानता। और मैं यह भी नहीं मानता कि मैं उसको नहीं जानता क्योंकि मैं उसको जानता भी हूं। हम लोगो में से वे जो उसको इस प्रकार समझते हैं कि हम ब्रह्म को जानते हैं, वे ठीक नहीं समझते और जो यह समझते हैं कि हम ब्रह्म को नहीं जानते, वे भी ठीक नहीं समझते। लेकिन जो उसको इस प्रकार जानते हैं कि वह ज्ञान के द्वारा नहीं जाना जा सकता; इस प्रकार वे मानते हैं वे ही उसको ठीक जानते हैं ॥ २ ॥

जिसने यह समझा कि मैं उस परब्रह्म परमात्मा को जान गया, सचमुच उसने नहीं जाना तथा जिसने उस पर विचार किया और यह समझा कि मैं उसे नहीं जान सका सचमुच उसी ने परब्रह्म को जाना; क्योंकि वह परब्रह्म परमात्मा ज्ञान से परे है। इसलिए वह परब्रह्म परमात्मा जिसको लोग समझते हैं कि हम जान गये, उनके लिए वह सचमुच न जाना हुआ ही है और जिन्होंने यह समझा कि हम उनको नहीं जानते वह ज्ञान के परे है, सचमुच उन्होंने ही उसे जाना है ॥ ३ ॥

प्रत्येक ज्ञान में जिस ज्ञान के द्वारा प्रत्येक वस्तु का ज्ञान होता है और जिस ज्ञान के बिना वस्तु के होते हुए भी ज्ञान नहीं होता उस परब्रह्म परमात्मा को जो मनुष्य ज्ञान स्वरूप ही समझता है, वह अमृतत्व को प्राप्त करता है अर्थात् अमर हो जाता है। आत्मा के द्वारा अर्थात् आत्मज्ञान से मनुष्य वीर्य अर्थात् बल और शक्ति को प्राप्त करता है। विद्या से तो केवल अमृतत्व प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

मनुष्य यदि इस ससार में रहता हुआ मरने के पहले ही उस परब्रह्म परमात्मा को इस प्रकार जान लेता है कि वह ज्ञानस्वरूप ही हैं, तब तो ठीक है। उसका कल्याण हो ही गया। परन्तु यदि शरीर के रहते हुए मरने के पहले ही उसने इस बात को नहीं जान लिया कि उस परब्रह्म परमात्मा का ऐसा स्वरूप है तब तो उसके लिये यह बड़ी हानि है; क्योंकि उसको बार-बार संसारचक्र में अनेक योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा। अतः जो धीर

पुरुष हैं यानी जो बड़ी-बड़ी विपत्ति पड़ने पर भी धीरज को नहीं खोते, प्रत्येक प्राणी में, भले बुरे मनुष्यों में, अहिंसक जन्तुओं में तथा घोर हिंसा करने वाले जीवों में, जल-अग्नि आदि पंचभूतों में, सभी चराचर जगत् में उसी एकत्व प्राप्त परब्रह्म को देख लेते हैं अर्थात् प्राप्त कर लेते हैं वे धीर पुरुष इस लोक से अर्थात् इस संसार से मरने के बाद अमर हो जाते हैं ॥ ५ ॥

तृतीय खण्ड

ऐसा कहा जाता है कि देवताओं और असुरों में संग्राम हुआ उसमें पर-ब्रह्म परमात्मा अर्थात् ईश्वर की कृपा से देवताओं ने विजय प्राप्त की। फिर उसके बाद ऐसा कहा जाता है कि उस विजय के कारण देवताओं ने उस परब्रह्म परमात्मा अर्थात् ईश्वर को भूलकर ऐसा अर्थात् इस प्रकार अभिमान किया कि यह विजय हम लोगों ने ही प्राप्त की है और जो यह महिमा और गौरव हमने प्राप्त किया है, उसके कारण भी हमी हैं ॥ १ ॥

जब परब्रह्म परमात्मा की कृपा से देवासुर संग्राम में देवता जीत गये, तब देवताओं ने ऐसा समझा—उनको ऐसा अहंकार हो गया कि हम लोगों की यह जो विजय है और जिसके कारण हमको जो यह महिमा, यह गौरव प्राप्त हुआ हैं वह हमारे ही पुरुषार्थ का फल है। हम ही इसके कारण हैं। इस प्रकार वे भगवान् को भूल गये। परन्तु परब्रह्म परमात्मा को इस बात का पता चल गया कि देवताओं को जो अहंकार हुआ है इसके कारण इनका अधःपतन ही होगा। अतः उन देवताओं के कल्याण के लिए भगवान् ने साकार दृश्यरूप धारण किया और उनके सामने प्रकट हुए। देवताओं ने उस भगवान् के रूप को देखा, कुछ भयभीत हुए और सोचने लगे कि यह तो कोई एक बहुत विशेष पूज्य महात्मा स्वरूप हैं; परन्तु यह न जान सके कि यह कौन है ॥ २ ॥

उस अत्यन्त अद्भुत, प्रकाशमान पूज्य यक्ष को देखकर देवताओं ने अग्नि देव से, जो कि देवताओं के मुखस्वरूप हैं, जो देवताओं के आगे-आगे चलते

हैं, कहा 'जातवेद ! आप तो सर्वज्ञ हैं, आप जाइये और पता लगाइये कि यह जो अद्भुत वस्तु देख पड़ती है, यह क्या है ?' यह सुनकर अग्निदेव ने अहंकारपूर्वक कहा कि बहुत अच्छा अभी जाता हूँ और पता लगाकर आता हूँ ।। ३ ।।

ऐसा कहकर अग्निदेव बड़े वेग से दौड़कर यक्ष के पास गये। उनको देखते ही यक्ष ने पहले ही पूछा कि आप कौन हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में अग्निदेव ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि मैं अग्नि हूँ, यह तो सभी लोग जानते हैं। इसके बाद फिर कहा, 'मैं जातवेदा हूं, सर्वज्ञ हूँ' यह भी सब लोग जानते हैं ।। ४ ।।

जब अग्निदेव ने बड़े गर्व के साथ कहा कि मैं अग्नि हूँ तथा सर्वज्ञ जातवेदा हूँ, इस बात को सब लोग जानते हैं, अग्नि के ऐसे बचनों को सुनकर परब्रह्म परमात्मा ने पूछा कि इस प्रकार प्रसिद्ध जो आप हैं, आपका सामर्थ्य क्या है ? अर्थात् आप में क्या शक्ति है ? इस प्रश्न को सुनकर अग्निदेव ने उसी प्रकार गर्व से कहा कि पृथ्वी में तथा और भी सभी जगह जो कुछ है उस सबको जलाकर राख कर सता हूँ ।। ५ ।।

अग्नि के उन बचनों को सुनकर कि 'मैं सब कुछ जला सकता हूँ', भगवान् ने उस अग्निदेव के सामने एक तिनका रख दिया और कहा, 'भला इस तिनके को तो जला दो'। तब अग्निदेव ने उसको जलाने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, परन्तु उस तिनके को वे जला न सके। अपनी शक्ति को इस तरह कुंठित हुई देखकर वे बड़े लज्जित हुए और उन परब्रह्म परमात्मा से और कोई बातचीत न करके वहाँ से लौट आये तथा उन देवताओं से कहा कि हम उस यक्ष के सम्बन्ध में कुछ नहीं जान सके कि वह कौन है ।। ६ ।।

तब सब देवताओ ने वायु से कहा, 'हे वायु देवता ! उस बात का विशेष रूप से पता लगाकर आओ कि यह यक्ष कौन है ?' वायु देवता ने कहा, 'बहुत अच्छा, जैसा आप लोग कहते हैं वैसा ही करूँगा' ।। ७ ।।

देवताओं से ऐसी प्रतिज्ञा करके वायु देव उस यक्ष के पास तेजी से दौड़ कर गये । यक्ष ने उन वायु देवता को इस प्रकार आया देखकर पूछा, 'आप कौन हैं ?' वायु देव ने उत्तर दिया, 'मैं वायु हूँ' इस बात को सभी जानते हैं और मैं 'मातरिश्वा' भी हूँ, इस बात को भी सब लोग जानते हैं । मैं अन्तरिक्ष लोक में चलता रहता हूँ ॥ ८ ॥

वायु देव के इस प्रकार उत्तर देने पर यक्ष ने उन वायु देव से फिर यह पूछा; 'आप जो इस प्रकार वायु और मातरिश्वा हैं, आप में क्या सामर्थ्य है ?; वायु देव ने कहा कि इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है, मैं सबको ग्रहण कर सकता हूँ, यानी उड़ा ले जा सकता हूँ ॥ ९ ॥

जब वायु देव ने अपने सामर्थ्य का इस प्रकार वर्णन किया तब यक्ष ने उनके सामने एक तिनका रख दिया और कहा कि भला आप इस तिनके को ही ले लीजिए और उड़ा दीजिए । इस पर वायु देवता ने अपनी सारी शक्ति लगाकर उस तिनके को उड़ाना चाहा, परन्तु उड़ा न सके । इसके बाद वायु देवता ने भी अग्नि की भाँति अधिक जानने का प्रयत्न नहीं किया । वहीं से लौट आये और देवताओं के पास आकर कहा, 'वह यक्ष क्या है, यह हम नहीं जान सके ।। १० ।।

जब अग्नि और वायु देव यक्ष का बिना पता लगाये लौट आये, तब सब देवताओं ने मिलकर इन्द्र से कहा कि आप सब देवताओं में श्रेष्ठ और बलवान् हैं, आप ही जाकर यह पता लगाइए कि यक्ष यह कौन है । देवताओं की इस बात को सुनकर इन्द्र महाराज ने कहा, 'बहुत अच्छा, हम जाते हैं ।' यह कहकर इन्द्र उस यक्ष के पास गये परन्तु, यक्ष उनके सामने से अन्तर्धान हो गया ॥ ११ ॥

जब इन्द्र के पहुँचने पर यक्ष अन्तर्धान हो गया, तब इन्द्रदेव बड़े आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगे, तो देखा कि वहीं आकाश में एक स्त्री है जो बड़ी शोभावाली है तथा विनय के साथ वे उसके पास गये, तो देखा कि यह तो 'उमा' है; जो हिमवान की पुत्री है अथवा जिसका शरीर सुवर्ण के आभूषणों

से सुवर्णमय हो रहा है, वही है। इन्द्र देव ने पूछा कि हे माता, अभी-अभी यहाँ पर जो यक्ष था और जो हमारे आने के बाद ही अन्तर्धान हो गया, आप हमको कृपा करके बता दीजिए कि वह कौन था, हम बड़ी श्रद्धा से आप से यह पूछना चाहते हैं ॥ १२ ॥

चतुर्थ खण्ड

इन्द्र के इस प्रकार विनय के साथ पूछने पर उमा देवी ने कहा कि यह देवासुर संग्राम में जो विजय हुई वह निश्चय करके ब्रह्म की हुई है यानी इस विजय के कारण ब्रह्म ही हैं। और आप सब देवताओं को जो यह गौरव प्राप्त हुआ है यह भी उन्हीं के कारण है। ऐसा कहा जाता है कि इन्द्र देवता ने इस बात को तभी जाना कि ब्रह्म ही यह यक्ष थे ॥ १ ॥

निश्चय करके यही कारण है कि अग्नि, वायु और इन्द्र ये तीनों देवता अन्य सब देवताओं से श्रेष्ठ माने गये हैं; क्योंकि इन्होंने उस यक्ष के पास जा करके उसको पास से देखा, और पहले-पहल जाना कि यह यक्ष ही ब्रह्म है ॥ २ ॥

उसी कारण से निश्चय रूप से मानों ऐसा कहा जाता है कि इन्द्र और सब देवताओं से बहुत बड़े हो गये; क्योंकि उन्होंने बहुत समीप से उसका स्पर्श किया और पहले-पहल यह जाना कि यह यक्ष जो थे वह परब्रह्म परमात्मा ही थे ॥ ३ ॥

इस मन्त्र में ऋषि उस परब्रह्म परमात्मा के अधिदैवत यक्ष का निर्देश करते हैं। कहते हैं कि यदि हम उन परब्रह्म परमात्मा का बाहरी इन्द्रियों से संकेत करना चाहें तो ऐसा समझना चाहिए कि जैसे बिजली चमकती है और तत्क्षण अदृश्य हो जाती है उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् बाहरी जगत् के अन्तरतम देश में क्षण भर के लिए जान पड़ता है और फिर बदल सा जाता है। इसी प्रकार दूसरी उपमा से भगवान् का निर्देश इस प्रकार किया जाता है कि जैसे आँखें पलक भांजती हैं उसी प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और फिर अदृश्य हो जाता है ॥ ४ ॥

अधिदैवत यक्ष को दिखलाने के बाद ऋषि कहते हैं कि परब्रह्म परमात्मा को अध्यात्म रूप से, अर्थात् बाहरी इन्द्रियों से काम न लेकर अन्तःकरण से समझना चाहे, तो ऐसे समझना चाहिए कि जैसे मन परब्रह्म परमात्मा तक बार-बार जाता है और फिर लौट आता है। इसी प्रकार से समझे और एक दूसरे प्रकार से इसको ऐसे समझा चाहिए कि जैसे मनुष्य बार-बार मन ही के द्वारा उस परब्रह्म परमात्मा का स्मरण करता है तथा ये जो संकल्प-विकल्प मन ही में बार-बार पैदा होते हैं, वे बार-बार मन को परब्रह्म परमात्मा के स्मरण करने को बाध्य करते हैं।। ५ ।।

ऋषि ने खण्ड एक में चार से आठ मन्त्रों तक यह बतलाया है कि साधारण सांसारिक लोग जिस ब्रह्म की उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं हैं, जो मन का भी मन प्राण का भी प्राण इत्यादि है। इससे लोग यह न समझें कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना ठीक-ठीक हो ही नहीं सकती। अतः ऋषि उपासना का क्या रूप होना चाहिए, यह दिखलाते हुए कहते हैं कि उस परब्रह्म परमात्मा को वन रूप से समझें अर्थात् वह भगवान् परब्रह्म परमात्मा ऐसे हैं कि जिनका सम्यक् रूप से अर्थात् च्छी तरह भजन करना चाहिए। परम शान्ति देने वाले अर्थात् माननीय वही हैं। परम शान्ति उन्हीं से मिल सकती है। इस प्रकार जो मनुष्य परब्रह्म परमात्मा को जानता है उसके प्रति समस्त संसार के प्राणी हिंसा भाव को छोड़ देते हैं, प्रेम करने लगते हैं और आशा-विश्वास करते हैं कि यह महात्मा हमारी सभी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है ।। ६ ।।

इस प्रकार उपदेश को सुन करके शिष्य गुरु से फिर पूछता है कि अब आप कृपा करके इस उपनिषद् के गूढ़ रहस्य को बतला दीजिए। यह सुन कर गुरु जी ने कहा कि यह जो अब तक हमने तुमसे उपनिषद् का ज्ञान कहा है यही इसका गूढ़ रहस्य भी है। परन्तु अब हम तुमसे यह बतलाते हैं कि उस परब्रह्म परमात्मा का जिससे साक्षात् सम्बन्ध है उस उपनिषद् का क्या रहस्य है ।। ७ ।।

उसकी अर्थात् उपनिषद् की प्राप्ति के लिए तपस्या, पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच कर्म इन्द्रियाँ और मन, इनका दमन और कर्म उसकी प्रतिष्ठा है अर्थात् आश्रय है। चारों वेद, वेद के सब अंग और सत्य, यह इसके आयतन अर्थात् घर या घेरा है ॥ ८ ॥

यह बात निश्चित है कि जो मनुष्य इस उपनिषद् को ऋषि अथवा गुरु से कही हुई को ठीक-ठीक वैसी ही समझता है, वह पाप को नष्ट करके अनन्त और सबसे श्रेष्ठ स्वर्ग लोक अर्थात् ब्रह्मानन्द में प्रतिष्ठित हो जाता है और फिर उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती ॥ ९ ॥

शान्ति पाठ

हमारे सभी अङ्ग वाणी, प्राण, आँख, कान, शारीरिक एवं मानसिक बुद्धि आदि बल और सारी इन्द्रियाँ ये सब पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो जाँय। सभी उपनिषद् एक मत से परब्रह्म परमात्मा का प्रतिपादन करते हैं। भगवान्! आप ऐसी कृपा करें कि मैं उस परब्रह्म परमात्मा यानी आपका तिरस्कार न करूँ अर्थात् आपको भूल न जाऊँ। प्रेम से आपका स्मरण करूँ। उसी प्रकार भगवान्! आप भी मुझको न भूल जाँय। आप मेरा त्याग न करें। सारांश यह है कि मेरा किसी प्रकार भी निराकरण न होवे, कभी न होवे। तब उस परब्रह्म परमात्मा में चित्त के पूर्ण रूप से लग जाने पर तथा अपने चित्त का सब वस्तुओं से वैराग्य हो जाने पर जिन धर्मों का वर्णन उपनिषदों में किया गया है वे सब मुझको प्राप्त हों, सभी मेरे अंग हो जाँय। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

THE ESSENCE OF THE KENA-UPANISHAD

The essence of the principles enunciated in the Kena-Upanishad is that the belief in man that he is the doer is due to egotism and ignorance. The truth is that the Brahma or God is the mover of all, that a man does. Success, failure, good name, bad name, glory and misery of a man are brought about by God according to his actions. This knowledge of truth is achieved by worship. The God to be worshiped is the Brahma who is happiness and glory personified. This worship is to be performed and firmly established by Concentration, Penance, Control of Senses and Actions are to be guided by the principles laid down in the VEDAS, SHASTRAS and PURANAS. In order to acquire true knowledge of the Vedas it is essential to know the Six ANGAS i. e. the six parts of the Vedas which are SIKSHA, KALPA, VYAKARANA, NIRUKTA, CHHANDA, and JYOTISH. The SHASTRAS include DARSHANAS, MANUSMRITI, traditions and legends described in the Ramayana, the Mahabharata and the Puranas.

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

ॐ, तत्, सत्, यह तीनों ब्रह्म के निर्देश हैं यानी ब्रह्म के नाम हैं या ब्रह्म की तरफ संकेत यानी इशारा करने वाले हैं। गीता के सत्रहवें अध्याय में २३-२४-२५-२६ व २७ श्लोकों में ॐ, तत्-सत् का सूत्ररूप में वर्णन किया गया है। ॐ, तत्, सत् यह तीन प्रकार का जिसका नाम है उस परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है यानी नम्रता के साथ झुककर प्रणाम करता हूँ।

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु। ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

पदच्छेद = ॐ, आप्यायन्तु, मम, अङ्गानि, वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रम्, अथो, बलम्, इन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं, ब्रह्म, औपनिषद, मा, अहम्, ब्रह्म, निराकुर्याम्, मा, मा, ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणम्, अस्तु, अनि-राकरणं, मे अस्तु।

तदा आत्मनि, निरते, य, उपनिषत्सु, धर्माः, ते मयि, सन्तु, ते, मयि, सन्तु। ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अन्वय = मम वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रम् बलम् इन्द्रियाणि अथो सर्वाणि च अङ्गानि आप्यायन्तु। सर्वं ब्रह्म औपनिषदम् (अस्ति)। अहम् ब्रह्म मा

निराकुर्याम्, ब्रह्म मा मा निराकरोत्, अनिराकरणम् अस्तु । तदा (तद्) आत्मनि निरते उपनिषत्सु ये धर्माः (सन्ति) ते (धर्माः) मयि सन्तु ।

शब्द	अर्थ
ॐ	भगवान् का नाम है ।
मम	मेरे
वाक्	वाणी
प्राणः	प्राण
चक्षुः	आँख
श्रोत्रम्	कान
बलम्	बल
इन्द्रियाणि	इन्द्रियाँ
अथो	तथा, साथ-साथ
सर्वाणि	सब
च	और
अंगानि	अग
आप्यायन्तु	परिपुष्ट हों अर्थात् मजबूत हो जांय ।
सर्वं	सब
ब्रह्म	ब्रह्म
औपनिषदं	उपनिषद में प्रतिपादित अर्थात् वर्णन किया हुआ ।
(अस्ति)	(है)
अहम्	मैं
ब्रह्म	ब्रह्म को, परब्रह्म परमात्मा को
मा	नहीं

शब्द	अर्थ
निराकुर्यां	अस्वीकार करूँ—भूलूं नहीं ।
ब्रह्म	ब्रह्म, परब्रह्म परमात्मा
मा (माम्)	मुझको
मा	नहीं
निराकरोत्	अस्वीकार करें परित्याग करें ।
अनिराकरणं	अस्वीकार न करना, परित्याग न करना
अस्तु	होवे ।
मे	मेरा
अनिराकरणं	अस्वीकार न करना, परित्याग न करना
अस्तु	होवे ।
तदा (तद्)	तब (तब)
आत्मनि	आत्मा में
निरते	निरत होने पर
उपनिषत्सु	उपनिषदों में
ये	जो
धर्माः (सन्ति)	धर्म (हैं)
ते (धर्माः)	वे (धर्म)
मयि	मुझमें
सन्तु	होवें

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
ते (धर्माः)	वे (धर्म)	सन्तु	होवें।
मयि	मुझ में		

भावार्थ = हमारे सभी अङ्ग, वाणी, प्राण, आँख, कान, शारीरिक, मानसिक एवं बुद्धि आदि बल, सारी इन्द्रियाँ, ये सब पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो जायँ। सभी उपनिषद् एक मत से परब्रह्म परमात्मा का ही प्रतिपादन करते हैं। भगवन्! आप ऐसी कृपा करें कि मैं उस परब्रह्म परमात्मा अर्थात् आपका तिरस्कार न करूँ या भूल न जाऊँ। प्रेम से आपका स्मरण करूँ। उसी प्रकार भगवन्! आप भी मुझे भूल न जायें, मेरा त्याग न करें। सारांश यह है कि मेरा किसी प्रकार भी निराकरण न होवे। तब उस परब्रह्म परमात्मा में चित्त के पूर्ण रूप से लग जाने पर तथा सब वस्तुओं से वैराग्य हो जाने पर जिन धर्मों का वर्णन उपनिषदों में किया गया हैं वे सब मुझको प्राप्त हों, वे सब मुझको प्राप्त हों, सभी मेरे अङ्ग हो जायँ। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

प्राण की व्याख्या—प्राण ने अपने को पांच प्रकार में विभक्त किया। पहला प्रकार स्वयं प्राण रूप से हुआ जो स्वयं श्वास-प्रश्वास के रूप में प्रकट हुआ। दूसरा अपान वायु के रूप से प्रकट हुआ जो कि अपना काम मल और मूत्र के विसर्जन की शक्ति के रूप में करता है। तीसरा व्यान वायु के रूप में हुआ उसको इस प्रकार से समझना चाहिए कि आमाशय में अन्न और मल भरा रहता है। वैश्वानर अग्नि के द्वारा पककर वह मल और अन्न भाप के समान उठता है और सारे शरीर में वायु के रूप में फैलता है। यही व्यान है। नलियों द्वारा ऊपर उठती हुई वह भाप जब शीतल हो जाती है तब वह चौथी समान वायु का रूप धारण कर लेती है और जो गर्मी थी वह पांचवीं उदान वायु का रूप धारण कर लेती है। 'अन्' धातु है जिसका अर्थ है चलना। इसी धातु से प्राण, अपान, व्यान, समान, और उदान शब्द बने हैं। प्राण केवल श्वास-प्रश्वास नहीं है। प्राण

का अर्थ अंग्रेजी में Vital Force किया गया है। इसको जीवन शक्ति भी कहते हैं।

May my limbs, speech, vital force i. e. PRANA eyes, ears as also strength and all the organs become fully well-developed. Whatever is revealed in the Upanishads relates to Brahma or God. May I not deny Brahma and may not Brahma deny me. Let there be no rejection of Brahma by me and let there be no spurning of me by Brahma. Let there be no spurning, let there be no spurning whatsoever of me. May all the virtues that are laid down in the Upanishads repose in me, who, being detached from the world, am engaged in the realisation of self, may they repose in me. May they repose in me.

Om. peace ! peace !! peace !!!.

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः।
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति।
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥

पदच्छेद—ॐ, केन, इषितम्, पतति, प्रेषितम्, मनः। केन, प्राणः, प्रथमः, प्रैति, युक्तः। केन, इषिताम्, वाचम्, इमाम्, वदन्ति, चक्षुः, श्रोत्रम्. कः, उ, देवः, युनक्ति ॥१॥

अन्वय—ॐ, केन इषितम् प्रेषितम् मनः पतति, केन युक्तः प्रथमः प्राणः प्रैति। केन इषिताम् इमाम् वाचम् (मनुष्याः) वदन्ति, कः, उ देवः चक्षुः श्रोत्रम् (च) युनक्ति ॥१॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
ॐ	परमेश्वर का नाम है	इषितम्	इच्छा किया हुआ,
केन	किससे		(किसकी इच्छा से)

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
प्रेषितम्	भेजा हुआ, प्रेरित किया हुआ अर्थात् किसकी प्रेरणा से।	केन	किससे
		इषिताम्	इच्छा की हुई
		इमाम्	इस
मन:	मन	वाचम्	वाणी को
पतति	(अपने विषय में) गिरता है अर्थात् उसकी ओर जाता है या प्राप्त होता है	(मनुष्या:)	(मनुष्य)
		वदन्ति	बोलते हैं
		क:	कौन
केन	किससे	उ	प्रसिद्ध
युक्त:	नियुक्त किया हुआ	देव:	देवता
प्रथम:	सबसे श्रेष्ठ, मुख्य, प्रथम	चक्षु:	आंख
		श्रोत्रम् (च)	(और) कान (को)
प्राण:	प्राण	युनक्ति	नियुक्त करता है, लगाता है
प्रैति	चलता है		

भावार्थ—किसकी इच्छा से या किसका भेजा हुआ अर्थात् किसकी प्रेरणा से मन अपने विषय में जाता है। यह मुख्य, श्रेष्ठ तथा प्रथम प्राण किससे युक्त (नियुक्त) होकर या किसकी प्रेरणा से चलता है। मनुष्य जो इस वाणी को बोलता है वह किसकी इच्छा से बोलता है, उसका मूल प्रेरक कौन है और वह कौन सा देवता है जो आंख और कान को अपने-अपने विषयों में लगाता है? ।।1।।

व्याख्या—इस उपनिषद् की शैली कुछ ऐसी समझ पड़ती है कि गुरु अपनी शिष्यमंडली को या उनमें से एक को प्रधान मानकर ब्रह्म का उपदेश कर रहा है। इस मन्त्र में मन, प्राण, वाणी, चक्षु और श्रोत्र इन पांच अङ्गों का वर्णन आया है। इनमें से चक्षु और श्रोत्र ज्ञान-इन्द्रियां हैं। वाणी कर्म-इन्द्रिय है। मन ज्ञान व कर्म इन्द्रियों का राजा है और प्राण के बिना तो शरीर ही नहीं रह सकता। ज्ञान-इन्द्रियां और कर्म-इन्द्रियां तथा मन,

यह सब सुषुप्ति के समय सो जाते हैं। उस समय भी प्राण अपना कर्म किया ही करता है। यह प्राण जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओं में बराबर जागरूक रहता है अर्थात् अपना काम किया करता है एवं तुरीय अवस्था तक पहुँचाने का भी प्राण साधक है। इसको (प्रथमः) श्रेष्ठ कहा हैं। परन्तु मन किसकी इच्छा से और किसका भेजा हुआ किसी विशेष विषय की ओर जाता है?—यह पहला प्रश्न हुआ। कारण कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि प्राण, वाणी, चक्षु इत्यादि की जितनी क्रियायें हैं उनका ज्ञान बिना मन के नहीं हो सकता। अन्तःकरणचतुष्टय, (मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त इन चारों) का 'मन' शब्द के द्वारा उपलक्षण होता है।

इस मन्त्र में गुरु शिष्य में जिज्ञासा का भाव उत्पन्न करने के लिए शिष्यों से अथवा शिष्यों में, जो एक मुख्य है उससे पूछता है कि यह मन यदि कहीं जाता है तो किसकी इच्छा से जाता है? अथवा यदि यह बात मानी जाय कि अपनी इच्छा से जाता है तो फिर यह भी देखा जाता है कि न चाहने पर भी मन विवश होकर पहुँच ही जाता है, तो वह किसके द्वारा विवश किया जाता है? यह प्रश्न करके फिर गुरु जो पूछते हैं कि यह जो प्राण सबसे श्रेष्ठ है वह किसके द्वारा किस कारण से चलता रहता है। फिर एक साथ यह भी पूछ देते हैं कि यह जो वाणी बोलती है वह किसकी इच्छा से बोलती है और ये आँख और कान जो हैं, ये किस देवता से संयुक्त किये जाते हैं अथवा अपने-अपने विषयों में लगाये जाते हैं। उदाहरण के लिये इस प्रकार समझिये कि जैसे लोग कहते हैं कि सप्त ऋषियों में अरुन्धती नक्षत्र को ध्यान देकर देखो। इसी प्रकार यह भी कहते हैं कि ध्यान देकर सुनो। यह इन आँख और कान को उनके विषयों में लगानेवाला कौन देवता है? देव शब्द या देवता शब्द इसलिये आया सा जान पड़ता है कि मन, प्राण, वाणी, श्रोत्र या कोई भी अपने आप कर्म करने में समर्थ नहीं है। किसी देवता से ही प्रेरित होकर यह सब अपना-अपना कर्म करने के लिये विवश किये जाते हैं। जो कुछ संसार में

होता है उसका कोई कर्ता अवश्य है। इस न्याय से जो कुछ शरीर में कर्म हो रहा है उसका कर्ता या तो जीवात्मा, विज्ञानात्मा हो सकता है या परब्रह्म परमात्मा हो सकता है। कोई जड़ इसका कारण नहीं हो सकता। उपलक्षण से यह सिद्ध करेंगे कि वह देवता परब्रह्म परमात्मा ही है।

By whose will does the directed mind go towards its object ? Who directs the vital force that proceeds all and which is the foremost to proceed towards its duty ? By whose will does the speech that people utter work ? Who is the effulgent being i. e. God who directs the eyes and ears to function in one particular manner ?

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राण-श्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥२॥

पदच्छेद—श्रोत्रस्य, श्रोत्रम् मनसः, मनः, यत्, वाचः, ह, वाचम्, सः, उ, प्राणस्य, प्राणः, चक्षुषः, चक्षुः, अतिमुच्य, धीराः प्रेत्य, अस्मात्, लोकात्, अमृताः, भवन्ति ॥२॥

अन्वय—यत्, श्रोत्रस्य, श्रोत्रम् (अस्ति) (यत्) मनसः, मनः (अस्ति), (यत्) ह, वाचः वाचम् (अस्ति) सः उ, प्राणस्य प्राणः (अस्ति) (तत्) चक्षुषः, चक्षुः (अस्ति), (एवं ज्ञात्वा) धीराः (मनुष्याः) (तत्) अतिमुच्य, अस्मात्, लोकात्, प्रेत्य, अमृता भवन्ति ॥२॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यत्	जो	यत्	(जो)
श्रोत्रस्य	कान का	ह	ही
श्रोत्रं (अस्ति)	कान (है)	वाचः	वाणी का
(यत्)	(जो)	वाचं (अस्ति)	वाणी (है)
मनसः	मनका	सः	वह
मनः (अस्ति)	मन (है)	उ	और

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
प्राणस्य	प्राण का	(तत्)	(उनकी श्रोत्रादि इन्द्रियों में ममत्व यानी अपनापन)
प्राणः (अस्ति)	प्राण (है)	अतिमुच्य	त्यागकर
(तत्)	(वह अथवा इसी कारण से)	अस्मात्	इस
चक्षुषः	आँख का	लोकात्	लोक से
चक्षुः (अस्ति)	आँख (है)	प्रेत्य	मरकर
(एव ज्ञात्वा)	(ऐसा जानकर)	अमृताः	अमर
धीराः	धीर अर्थात् धैर्य वाले	भवन्ति	हो जाते हैं
(मनुष्याः	(मनुष्य)		

भावार्थ—जो (अथवा चूँकि) वह परब्रह्म परमात्मा कानों का भी कान है अर्थात् जिसके बिना विज्ञानात्मा जीव भी सुन नहीं सकता, जो मन का भी मन है अर्थात् जिसके बिना मन भी अपना काम नहीं कर सकता, अवश्य ही वही परब्रह्म परमात्मा वाणी की भी वाणी है, वही निश्चय करके प्राणों का प्राण है और आँखों की आँख है। धैर्यवान् पुरुष अर्थात् जो पुरुष कभी धीरज को नहीं छोड़ते, वे संसार के उपर्युक्त श्रोत्रादि विषयों का ममत्व छोड़ देते हैं। इस बात का अभिमान कभी नहीं करते कि मैं सुनता हूँ, मैं सोचता हूँ इत्यादि, अर्थात् इन भावनाओं को त्याग देते हैं, वे इस संसार से जाने के बाद अर्थात् मरने पर अमर हो जाते हैं ॥२॥

व्याख्या—इस मन्त्र में गुरु जी शिष्यों को बतलाते हैं कि वह देवता जिसका संकेत पहले मन्त्र में किया गया है वह कानों का भी कान, मन का भी मन, वाणी की भी वाणी, प्राण का भी प्राण, और चक्षु का भी चक्षु है। जो धीर पुरुष ऐसा जानकर संसार को छोड़ता है वह मुक्त हो जाता है।

इस मन्त्र में यह बात स्पष्ट करने के लिए कि वह देवता प्राणों का प्राण इत्यादि इस प्रकार कहा जाय तो कुछ स्पष्ट हो जाता है कि आँख का

जो गोलक है यह आँख नहीं है। इसके अन्दर जो देखने की शक्ति है जिसके बिना आँख के रहते हुए मनुष्य देख नहीं सकता वही वास्तविक आँख है। परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि भीतर दर्शनशक्ति के होते हुए भी कुछ बाहरी प्रकाश का भी साधन हो। बाहरी प्रकाश का सबसे बड़ा प्रकाश देनेवाला सूर्य है जो जीवात्मा के वश में नहीं है। इसलिए स्पष्ट है कि आँख को भी देखने के लिए किसी और शक्ति की आवश्यकता है और वही सचमुच आँख को देखने के लिये रूप की ओर ले जाती है।

Since HE i. e. Brahma is the Ear i. e. the hearing capacity of the ear; the Mind i. e. the thinking capacity of the mind, the Speech i. e. the speaking capacity of the speech, the Life i. e. the energy of the life, and the Eye i. e. the seeing capacity of the eye, therefore the sober and wise men, after renouncing this world and after detaching themselves from the senses and their objects, become immortal.

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥

पदच्छेद—न, तत्र, चक्षुः, गच्छति, न वाक् गच्छति, नो मनः, न विद्मः, न विजानीमः, यथा, एतत्, अनुशिष्यात्, अन्यत्, एव, तत्, विदितात्, अथो, अविदितात्, अधि। इति, शुश्रुम, पूर्वेषाम्, ये, नः, तत्, व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥

अन्वय—तत्र, चक्षुः न गच्छति, (तत्र) वाक् न गच्छति, नो मनः (तत्र गच्छति), यथा एतद् अनुशिष्यात् (तथा वयं) न विद्मः, न विजानीमः; (यतः) तद् विदिताद् अन्यद् एव अथो तद् अविदिताद् अधि (अस्ति)। ये नः तद् व्याचचक्षिरे (तेषां) पूर्वेषाम् इति (वयं) शुश्रुम ॥ ३ ॥

शब्द	अर्थ
तत्र	वहाँ
चक्षुः	आँख
न गच्छति	नहीं जाती है
(तत्र)	(वहाँ)
वाक्	वाणी
न गच्छति	नहीं जातो है,
नो	नहीं
मनः	मन
तत्र गच्छति	वहाँ जाता है
यथा	जैसा
एतद्	इसको
अनुशिष्यात्	उपदेश करे
(तथा वयं)	(वैसे हमलोग)
न विद्मः	नहीं जानते हैं
न विजानीमः	नहीं समझते हैं
(यतः)	क्योंकि
तद्	वह (ब्रह्म)

शब्द	अर्थ
विदितात्	जाने हुए से
अन्यद्	और दूसरा
एव	ही (है)
अथो	और
तद्	वह (ब्रह्म)
अविदिताद्	न जाने हुए से
अधि (अस्ति)	परे, ऊपर (है)
ये	जिन (महात्माओं ने)
नः	हमलोगों को
तद्	उस (ब्रह्म के सम्बन्ध में)
व्याचचक्षिरे	व्याख्यान किया था,
(तेषां)	(उनका)
पूर्वेषाम्	पूर्व पुरुषों का
इति	यही (कथन)
(वयं)	(हम लोगों ने)
शुश्रुम	सुना है

भावार्थ---वहाँ अर्थात् उस परब्रह्म परमात्मा तक आँख नहीं जाती, वह आंख का विषय नहीं है, उसको आँख नहीं देख सकती। वाणी की भी गति वहाँ तक नहीं है, वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। "नेति नेति" कहकर शान्त हो जाती है। मन भी उसको नहीं सोच सकता, मन से भी वह परे है। न तो उसको हम जानते हैं और न पढ़-लिख कर और न सोच-विचार करके ही जान सकते हैं। हम लोग उसका उपदेश अपने शिष्यों से किस प्रकार से करें उसको हम नहीं जानते; क्योंकि जितना कुछ भी जाना हुआ है वह परब्रह्म परमात्मा उस सबसे कुछ दूसरा ही है एवं वह परब्रह्म

परमात्मा जो कुछ नहीं जाना हुआ है, जिसको कोई भी नहीं जानता उस सबके ऊपर है, वह सबके परे है। जिन महात्माओं ने इस परब्रह्म परमात्मा के सम्बन्ध में हमलोगों को विशेष रूप से समझाया है उन पूर्व पुरुषों से हमने ऐसा ही सुना है ॥ ३ ॥

व्याख्या—इस मन्त्र में गुरु जी अपने शिष्यों से कहते हैं कि उस परब्रह्म परमात्मा को आँख नहीं देख सकती। आँख की गति वहाँ तक है ही नहीं। वाणी भी उसका वर्णन नहीं कर सकती। मन के लिए भी वह अगम्य है इस-लिए उसको हम लोग नहीं जानते और इसी कारण से हम इस बात का वर्णन नहीं कर सकते कि कोई गुरु अपने शिष्य को इसके सम्बन्ध मे किस प्रकार समझावे। अभी तक हमने अपने पूर्व आचार्यों से जो सुना है कि वह परब्रह्म परमात्मा, जितनी जानी हुई वस्तुएं हैं, उनसे अलग है तथा जो नहीं जानी हुई हैं उनसे भी वह पृथक् है। इस मन्त्र में केवल चक्षु, वाक् और मन का वर्णन आया है। श्रोत्र और प्राण जो पहले मन्त्र के वर्णन में प्रयुक्त थे उनका इसमें वर्णन नहीं किया गया। इसका कारण यह समझ पड़ता है कि गुरु ने ज्ञानेन्द्रियों में श्रेष्ठ चक्षु को ले लिया और कर्मेन्द्रियों में जो सबसे श्रेष्ठ है उस वाणी को ले लिया। मन इन ज्ञान व कर्मेन्द्रियों का राजा है। इसलिए उसका भी समावेश हो गया। इस मन्त्र में वाक् शब्द का अर्थ यदि 'श्रुति' वेद ले लिया जाय तो ऐसा अर्थ हो सकता है कि वेद भी उसका वर्णन करते-करते बाद में 'नेति-नेति', वह इतना ही है, ऐसा कहकर शान्त हो जाते हैं।

Neither does the eye nor speech nor mind go there. Neither do we know nor can we know with all our efforts that Brahma is such and such. Therefore, we are not aware as to how to give instructions about Brahma. That Brahma is surely different from the known and again it is much above the unknown. Thus, we have heard from the ancient teachers who explained Brahma to us.

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ४ ॥

पदच्छेद--यत्, वाचा, अनभ्युदितम्, येन, वाक्, अभ्युद्यते । तत्, एव, ब्रह्म, त्वम्, विद्धि, न, इदम्, यत्, इदम्, उपासते ॥ ४ ॥

अन्वय--यद् (ब्रह्म) वाचा अनभ्युदितं (अस्ति) येन (च) वाग् अभ्युद्यते । त्वम् तद् एव ब्रह्म विद्धि, यद् इदम् (लोकः) उपासते (तद्) इदम् ब्रह्म न (अस्ति) ॥ ४ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यद्	जो	तद्	उसको
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)	एव	ही
वाचा	वाणी के द्वारा	ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
अनभ्युदितं	नहीं कहा गया	विद्धि	जानो
(अस्ति)	(है)	यद्	जो
येन	जिसके द्वारा	इदम्	यह
(च)	(और)	(लोकः)	(संसारी लोग)
वाग्	वाणी	उपासते	उपासना करते हैं
अभ्युद्यते	बोलती है या बोली	(तद्)	(वह)
	अथवा बुलवाई जाती	इदम्	यह
	है	ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
त्वम्	तुम	न (अस्ति)	नहीं (है)

भावार्थ--वाणी जिसका कि पूर्णरूप से वर्णन करके पार नहीं पा सकती । इतना ही नहीं वरन् जिसके कारण से वाणी बोली जाती है अथवा यों कहिए कि वह परब्रह्म परमात्मा वाणी को बोलने के लिए विवश करता है । उसी को तुम ऐसा समझो कि वह परब्रह्म परमात्मा है । संसार में साधारण लोग जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि हम अभी वर्णन कर चुके हैं ।

That which is not uttered by speech but by which the speech is revealed; know that alone to be Brahma and not what people worship as an object.

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥

पदच्छेद—यत्, मनसा, न, मनुते, येन, आहुः मनः मतम् । तद, एव, ब्रह्म, त्वम्, विद्धि, न इदम, यद, इदम्, उपासते ॥ ५ ॥

अन्वय—यद् (ब्रह्म) मनसा न मनुते येन मनः मतम् (इति) (विद्वांसः) आहुः । तद् एव त्वं ब्रह्म विद्धि इदं यद् (लोकः) उपासते (तद्) इदम्, (ब्रह्म) न (अस्ति) ॥ ५ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यद्	जो	एव	ही
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)	त्वं	तुम
मनसा	मन के द्वारा	ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
न	नहीं	विद्धि	जानो
मनुते	मनन संकल्प अथवा निश्चय करता है	इदं	यह
		यद्	जिसको
येन	जिसके द्वारा	(लोकः)	(संसारी मनुष्य)
मनः	मन	उपासते	उपासना करते हैं
मतम्	विषयीकृत, व्याप्त है	(तद्)	(वह)
(इति)	(ऐसा)	इदम्	यह
(विद्वांसः)	(विद्वान् लोग)	(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
आहुः	कहते हैं	न (अस्ति)	नहीं (है)
तद्	उसको		

भावार्थ—मन के द्वारा संसार के लोग जिसका मनन, संकल्प अथवा निश्चय नहीं कर सकते, विद्वान् लोग मन को उस चैतन्य परब्रह्म परमात्मा

के द्वारा विषयीकृत अर्थात् व्याप्त बतलाते हैं। उसी परब्रह्म परमात्मा को तुम परब्रह्म समझो तथा साधारण संसारी लोग जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है।

That which can not be comprehended with the mind but by which the mind is encompassed; know that to be Brahma and not what people worship as an object.

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६ ॥

पदच्छेद—यत्, चक्षुषा, न पश्यति, येन, चक्षूँषि, पश्यति, तत् एव, ब्रह्म, त्वं, विद्धि, न, इद, यद्, इदम्, उपासते ॥ ६ ॥

अन्वय—यत् (कश्चित्) (मनुष्यt) चक्षुषा न पश्यति (तथा) येन (मनुष्यः) चक्षूँषि पश्यति, त्वं तद् एव ब्रह्म विद्धि यत् इद (मनुष्याः) उपासते (तद्) इदं न (अस्ति) ॥ ६ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यत्	जिसको	एव	ही
(कश्चित्)	(कोई)	ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
चक्षुषा	आँख से	विद्धि	जानो।
न पश्यति	नहीं देखता है,	यद्	जिसको
(तथा)	(ऐसे ही)	इदं	यह
येन	जिससे, जिसकी सहायता से	(लोकः)	(मनुष्य लोग)
		उपासते	उपासना करते हैं
चक्षूंषि	आँखों के विषय को	(तद्)	(वह)
पश्यति	देखता है	इदं	यह
त्वं	तुम	(ब्रह्म)	(परमात्मा परब्रह्म)
तद	उसको	न (अस्ति)	नहीं (है)।

भावार्थ—मनुष्य उस परब्रह्म परमात्मा को आँख से नहीं देख सकते।

बल्कि जिसके द्वारा मनुष्य इन आँखों के विषय रूप को देखते हैं उसको तुम परब्रह्म परमात्मा जानो और साधारण मनुष्य जिसको परब्रह्म परमात्मा समझकर पूजते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है जिसका कि वर्णन हो रहा है।

व्याख्या——इस मन्त्र के दूसरे पद में "येन चक्षूंषि पश्यति" पद आया है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है जिसके द्वारा आँख देखती है। यहाँ पर 'चक्षूंषि' शब्द बहुवचन और 'पश्यति' शब्द एकवचन है। इसके सम्बन्ध में ऐसा कहा जा सकता है कि यह वचनव्यत्यय आर्ष प्रयोग है। ऐसा प्रयोग आगे चौथे खण्ड के दूसरे मन्त्र में भी आया है। वहाँ पर 'ते' शब्द बहुवचन है और उस शब्द की क्रिया "विदाञ्चकार" एकवचन है।

That which can not be seen with the eye but by which the eyes perceive their object; know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदँ श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ७ ॥

पदच्छेद—यत्, श्रोत्रेण, न शृणोति, येन श्रोत्रम्, इदं, श्रुतम्। तत्, एव, ब्रह्म, त्वं, विद्धि। न इदं, यद् इदम्, उपासते ॥ ७ ॥

अन्वय—यत् (मनुष्यः) श्रोत्रेण न शृणोति (तथा) येन इदम् श्रोत्रम् श्रुतम् (भवति)। तद् एव त्वं (ब्रह्म) विद्धि। यद् इदं (लोकः) उपासते (तद्) इदं (ब्रह्म) न (अस्ति) ॥ ७ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यत्	जिसको	शृणोति	सुनता
(मनुष्यः)	(मनुष्य)	(तथा)	(बल्कि)
श्रोत्रेण	कान से, कान के द्वारा	येन	जिसके द्वारा
		इदम्	यह
न	नहीं	श्रोत्रम्	कान

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
श्रुतम्	सुना हुआ	इदं	यह
(भवति)	(होता है)	(लोक:)	(मनुष्य)
तद्	उसको	उपासते	उपासना करता है
एव	ही	(तद्)	(वह)
त्वं	तुम	इदं	यह
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)	(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
विद्धि	जानो ।	न (अस्ति)	नहीं (है)
यद्	जिसको		

भावार्थ—मनुष्य जिस परब्रह्म परमात्मा को कान के द्वारा नहीं सुन सकते बल्कि मनुष्य जिसके द्वारा इस श्रोत्र अर्थात् शब्द को कान के द्वारा सुना हुआ मानते हैं उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानो तथा साधारण मनुष्य संसार में जिसको परब्रह्म परमात्मा समझते हैं और जिसकी उपासना करते हैं वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है, जिसका वर्णन हो रहा है ।

That which can not be heared with the ear but by which the sound is heard by the ear; know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ८ ॥

पदच्छेद– यत्, प्राणेन, न, प्राणिति, येन, प्राणः, प्रणीयते, तद्, एव, ब्रह्म, त्वं, विद्धि, न, इदम्, यद्, इदम्, उपासते ॥ ८ ॥

अन्वय—यद् (ब्रह्म) प्राणेन न प्राणिति (परन्तु) येन (ब्रह्मणा) प्राणः प्रणीयते तद् एव त्वं ब्रह्म विद्धि । (तथा) यद् इदम् (लोकः) उपासते (तद्) इदम् (ब्रह्म) न (अस्ति) ॥ ८ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यद् (ब्रह्म)	जो (ब्रह्म)	ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
प्राणेन	प्राण के द्वारा	विद्धि	जानो
न	नहीं	(तथा)	(और)
प्राणिति	प्राणन-क्रिया करता	यद्	जिसको
	है, साँस लेता है	इदम्	यह
(परन्तु)	(परन्तु)	(लोकः)	(मनुष्य)
येन	जिससे	उपासते	उपासना करते है
प्राणः	प्राण	(तद्)	(वह)
प्रणीयते	ले जाया जाता है	इदम्	यह
तद्	उसी को	(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
एव	ही	न (अस्ति)	नहीं (है)
त्वं	तुम		

भावार्थ—वह मनुष्य प्राण के द्वारा प्राणनक्रिया नहीं करता यानी साँस नहीं लेता अर्थात् गंधवान् वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त नहीं करता बल्कि जिसके द्वारा प्राण अपनी प्राणन क्रिया करता है यानी साँस लेता है तथा गंध का उपभोग करने के लिए विवश किया जाता है, उसी को तुम परब्रह्म परमात्मा जानो और साधारण मनुष्य संसार में जिसकी उपासना परब्रह्म परमात्मा समझकर करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है जिसका कि वर्णन किया जा रहा है ॥ ८ ॥

व्याख्या—खण्ड एक के मन्त्र ४-५-६-७-८ के भाव प्रायः एक से हैं। भेद केवल इन्द्रियों में और शब्दों में है। इसलिए उनके सम्बन्ध में एक ही साथ व्याख्या की जाती है। यह परब्रह्म परमात्मा जिसकी कि साधारण लोग उपासना करते हैं, वह परब्रह्म परमात्मा नहीं है। सगुण रूप परब्रह्म परमात्मा को लोग स्नान, चन्दन व धूप, दीप तथा नैवेद्य आदि प्रकार से पूजते हैं और बाद को वाणी के द्वारा उसकी स्तुति करते हैं। मन को एकाग्र करके अन्तश्चक्षु के द्वारा ध्यान करते हुए रूप और नाम आदि

गुणों का स्मरण करते हुए उपासना करते हैं। परन्तु इन सब बातों से उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना सुचारु रूप से नहीं हो सकती, क्योंकि वाणी यदि बोलती है तो वह उसी परब्रह्म परमात्मा के द्वारा प्रेरित होती है। चक्षु, श्रोत्र, मन और प्राण यह सब उसी की प्रेरणा से अपना-अपना काम करते हैं। तब वे उस प्रेरक को कैसे जान सकते हैं? इस प्रकार गुरु शिष्य से कहता है कि यह लौकिक उपासना पर्याप्त यानी काफी नहीं है ॥ ८ ॥

That which is not smelt with the organ of smell but by which the organ of smell is made to function; know only that to be Brahma and not what people worship as an object.

●

द्वितीय खण्ड

यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि[1]
नूनम् त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ।
यदस्य च त्वं यदस्य देवेष्वथ नु
मीमाँस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ १ ॥

पदच्छेद—यदि, मन्यसे, सुवेद, इति, दहरम्, एव, अपि, नूनम्, त्वं वेत्थ, ब्रह्मणः, रूपं, यद्, अस्य, च, त्वं, यद्, अस्य, देवेषु, अथ, नु, मीमांस्यम्, एव, ते, मन्ये, विदितम् ॥ १ ॥

अन्वय—यदि (त्वं) मन्यसे, (अहम्) (तद्) (ब्रह्म) सुवेद, इति (तद्) (त्वया) (यद्) (ब्रह्म) (ज्ञातम्) (तद्) अपि नूनम दहरम् (दभ्रम्,) एव (अस्ति)। यद् अस्य ब्रह्मणः रूपं त्वं वेत्थ यत् (च) अस्य ब्रह्मणः (रूपं) त्वं देवेषु वेत्थ (तद्) (अपि) त्वया (ज्ञातम्) (दहरम्) (दभ्रम्) (अपि) (नूनम्) (एवं) (अस्ति) अथ ते (तद् ब्रह्म) नु मीमांस्यम् एव अस्ति। (तदा) (शिष्यः) (कथयति) (तद्) (ब्रह्म) विदितम् (इति) (अहम्) मन्ये ॥ १ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यदि	अगर	(तद्)	(उस)
(त्वं)	(तुम)	(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा को)
मन्यसे	मानते हो, समझते हो कि	सुवेद	जानता हूँ
		इति	यह (तो)
(अहम्)	(मैं)	(तद्)	(वह)

---

१. किन्हीं मातृकाओं में 'दहरम्' के स्थान पर 'दभ्रम्' पाठ है। दोनों का अर्थ एक ही है।

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(त्वया)	(तुम्हारे द्वारा)	(त्वया)	(तुम्हारे द्वारा)
(यद्)	(जो)	ज्ञातम्	जाना गया
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)	(तद्)	(वह)
(ज्ञातम्)	(जाना गया)	(अपि)	(भी)
(तद्)	(वह)	(नूनम्)	(निश्चय ही)
अपि	भी	(दहरम्)दभ्रम्	(थोड़ा)
नूनम्	निश्चय ही	अस्ति	है
दहरम् (दभ्रम्)	थोड़ा, सूक्ष्म	अथ	इसलिए
एव (अस्ति)	ही (है)	ते	तुम्हारे लिए
यद्	जो	(तद् ब्रह्म)	(वह परब्रह्म परमात्मा)
अस्य	इस	नु	निश्चय ही
ब्रह्मण:	परब्रह्म परमात्मा के	मीमांस्यम्	विचारणीय
रूपं	रूप को	एव	ही
त्वं	तुम	अस्ति	है
वेत्थ	जानते हो	(तदा)	(तब)
(च) यद्	(और) जो	(शिष्य:)	(शिष्य)
अस्य	इस	(कथयति)	(कहता है)
ब्रह्मण:	ब्रह्म के	(तद्)	(वह)
(रूपं)	(रूप को)	(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
त्वं	तुम	विदितम्	ज्ञात हुआ
देवेषु	देवताओं में	(इति)	(यह)
वेत्थ	ज़ानते हो	(अहम्)	(मैं)
तद्	वह	मन्ये	मानता हूँ
अपि	भी		

भावार्थ—यदि तुम मानते हो कि मैं ब्रह्म को भली प्रकार जानता हूँ

तो जो कुछ तुम जानते हो वह सब थोड़ा ही है। इस ब्रह्म के जिस रूप को तुम जानते हो और उसका जो स्वरूप तुम हो और जो देवताओं में है, वह तो तुम्हारे लिए विचारणीय ही है। इस प्रकार आचार्य के कहने पर शिष्य ने कुछ सोच-विचार करके कहा कि अब मैं ब्रह्म के स्वरूप को जान गया हूं, ऐसा मैं समझता हूं।

व्याख्या—दूसरे खण्ड में केवल पांच मन्त्र हैं तथा पहले चार का विषय बहुत गम्भीर जान पड़ता है। पहले मन्त्र में 'दहरमेव' और 'दभ्रमेव' इस प्रकार दो पाठ हैं, भाव दोनों का एक ही है। इस मन्त्र में गुरुजी शिष्यों से यह समझाकर कहते हैं कि संसार में साधारणतया लोग इस परब्रह्म परमात्मा के सम्बन्ध में उचित रीति से विचार नहीं करते। समझते हैं कि विचार करने की बात ही क्या है। वह परब्रह्म परमात्मा अनादि है, अनन्त है और सर्वत्र है इत्यादि।

गुरुजी सावधान करते हुए कहते हैं कि जो समझते हैं कि भगवान् ऐसे हैं, यह उनका ज्ञान बहुत थोडा है। कुछ और विशेष विचार करने की आवश्यकता है। भगवान् के जिस स्वरूप को लोग देखते हैं और देवताओं में जिस प्रकार वे परब्रह्म परमात्मा की उपासना करते हैं, उसके सम्बन्ध में कुछ और भी विचार करने की आवश्यकता है। इतना सुनकर शिष्य ने समझा और कहा कि मैंने उस ब्रह्म का रूप समझा।

इस मन्त्र में कुछ भाव ऐसा भी समझ में आता है कि गुरु शिष्य से इस प्रकार कहते हैं कि तुम उस परब्रह्म परमात्मा के किस प्रकार के अंश हो और देवताओं में उन परब्रह्म परमात्मा का कौन सा स्वरूप विद्यमान है?—इसको तो अभी विचार करना ही है अर्थात् जीव और ईश्वर में क्या सम्बन्ध है।

इस मन्त्र में सम्भवतः कुछ इस बात का संकेत किया जाता है कि तुम भोक्ता हो और पंचभूत, पंच तन्मात्रा आदि तथा परब्रह्म परमात्मा का क्या सम्बन्ध है। संभवतः गुरु श्वेताश्वतर-उपनिषद् के प्रथम अध्याय के १२ वें मन्त्र 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म चैतत्'

अर्थात् इसका भाव ऐसा समझ पड़ता है कि भोक्ता भोगने वाला, भोग्य जिसका भोग किया जाता है और इन दोनों का एक दूसरे से सम्बन्ध कराने वाला जो प्रेरक है, यह सब तीनों मिल करके ब्रह्म ही है, उससे परे नहीं है।

If you believe that you know Brahma well, then what you know is only a little expression of Brahma. The little that you know of Brahma, what relationship it has with you and with the gods. Therefore, the Brahma is still to be pondered over by you On hearing this from the teacher, the disciple said that he thinks, that Brahma is known.

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥ २॥

पदच्छेद—न, अहम्, मन्ये, सुवेद, इति, नो, न, वेद, इति, वेद, च यः, नः, तत्, वेद, तद्, वेद, नो, न, वेद, इति वेद च॥ २॥

अन्वय—अहम् (तद्) (ब्रह्म) सुवेद इति (अहम्) न मन्ये (अहम्) (तत्) (ब्रह्म) न वेद इति नो (अहम्) (मन्ये) (यतः) च (तत्) (ब्रह्म) (अहम्) वेद। नः यः तत् (ब्रह्म) वेद (सः) (तद्) (ब्रह्म) वेद नो (तत्) (ब्रह्म) न वेद इति (सः) तत् (ब्रह्म) वेद च॥ २॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अहम्	मैं	न	नहीं
(तत्)	(उस)	वेद	जानता हूँ
(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा को)	इति	ऐसा भी
सुवेद	अच्छी तरह से जानता हूँ	नो	नहीं है
		वेद	जानता भी हूँ
इति	यह	नः	हम लोगों (शिष्यों) में से
न	नहीं		
मन्ये	मानता हूँ	यः	जो कोई
च	और	तत्	उस

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा को	(यः)	(जो)
वेद	जानता है	तद्	उस
(सः)	(वह)	ब्रह्म	ब्रह्म को
तद्	उस	न वेद	नहीं जानता
ब्रह्म	ब्रह्म को	सः	वह
वेद	जानता है	तद्	उस
इति	इसलिये	ब्रह्म	ब्रह्म को
अहम्	मैं	वेद	जानता है
मन्ये	मानता हूँ (कि)	च	और

भावार्थ—मैं यदि इस बात को मानूं, कि मैं ब्रह्म को अच्छी तरह जान गया, यह बात ठीक है यह मैं नहीं मानता। और मैं यह भी नहीं मानता कि मैं उसको नहीं जानता क्योंकि मैं उसको जानता भी हूं। हमलोगों में से वे जो उसको इस प्रकार समझते हैं कि हम ब्रह्म को जानते हैं, वे ठीक नहीं समझते और जो यह समझते हैं कि हम ब्रह्म को नहीं जानते वे भी ठीक नहीं समझते, लेकिन जो उसको इस प्रकार जानते हैं कि वह ज्ञान के द्वारा जाना नहीं जा सकता और इस प्रकार जो मानते हैं, वे ही उसको सही जानते हैं।

व्याख्या—यह जो दूसरा मन्त्र है इसकी पदावली बहुत कुछ एक ही तरह की है। इस मन्त्र में गुरु शिष्य-मंडली से कहते हैं कि यदि कोई कहे कि हम उस परब्रह्म परमात्मा को अच्छी तरह से जानते हैं, तो यह बात यथार्थ नहीं है। मैं इसको नहीं मानता और यदि कोई कहे कि मैं उसको नहीं जानता, यह भी मैं मानने को तैयार नहीं हूं; क्योंकि कम से कम वह इतना तो जानता ही है कि मैं उसे नहीं जानता। इसलिए गुरु अथवा शिष्य-मण्डली अथवा सभी लोग यदि इस प्रकार से परब्रह्म परमात्मा को समझें कि वह पांचों ज्ञानेन्द्रियों और सब कर्मेन्द्रियों से, यहां तक कि जो मन और बुद्धि के भी परे है, उसको वह समझ नहीं सकता। इस तरह जो समझता है,

वही उस परब्रह्म परमात्मा को जानता है और जो इसको इस प्रकार से नहीं जानता, वह यह समझते हुए भी कि वह जानता है, नहीं जानता।

I do not believe that we know Brahma well. Nor do I believe that we do not know Brahma. For in fact, we do know Brahma. From amongst us he, who thinks that we know Brahma, is not correct; similarly he, who thinks that he does not know Brahma, too, is not correct. One who knows that the Brahma is not a thing to be known, he in fact knows Brahma.

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ ३ ॥

पदच्छेद—यस्य, अमतम्, तस्य, मतम्, मतम्, यस्य, न, वेद, सः। अविज्ञातम्, विजानताम्, विज्ञातम्, अविजानताम् ॥ ३ ॥

अन्वय—यस्य (तत्) (ब्रह्म) अमतम् (अस्ति) तस्य (तत् ब्रह्म) मतम् (अस्ति) यस्य (तत् ब्रह्म) मतम् (अस्ति) सः (तत् ब्रह्म) न वेद। (तत् ब्रह्म) विजानताम् अविज्ञातम् (अस्ति) (तत् ब्रह्म) अविज्ञातम् (अस्ति) (तत्) (तत् ब्रह्म) अविजानताम् (तत् ब्रह्म) विज्ञातम् (अस्ति) ॥ ३ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यस्य	जिसका	मतम् (अस्ति)	जाना हुआ (है)
(तत्)	(वह ब्रह्म)	सः	वह
अमतम् अस्ति	न जाना हुआ (है)	(तत् ब्रह्म)	(उस ब्रह्म को)
तस्य	उसका	न	नहीं
(तत्)	(वह ब्रह्म)	वेद	जानता है
मतम् (अस्ति)	जाना हुआ (है)	(यतः)	(क्योंकि)
यस्य	जिसका	(तत्)	(उस ब्रह्म को)
(तत् ब्रह्म)	(वह ब्रह्म)	विजानताम्	जानने वालों के लिए

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(तत् ब्रह्म)	(वह ब्रह्म)	तत्	वह
अविज्ञातम्	न जाना हुआ	ब्रह्म	ब्रह्म
(अस्ति)	(है)	विज्ञातम्	जाना हुआ
तत् ब्रह्म	उस ब्रह्म को	अस्ति	है
अविजानताम्	जो नहीं जानते उनका		

भावार्थ—जिसने यह समझा कि मैं परब्रह्म परमात्मा को जान गया, सचमुच उसने नहीं जाना और जिसने उस पर विचार किया और यह समझा कि मैं उसे नहीं जान सका, सचमुच उसी ने परब्रह्म परमात्मा को जाना; क्योंकि वह परब्रह्म परमात्मा तो ज्ञान से परे हैं। इसलिए वह परब्रह्म परमात्मा जिसको लोग समझते है कि हम जान गये, उनके लिए वह सचमुच न जाना हुआ ही है और जिन्होंने यह समझा कि हम उसको नहीं जानते, वह ज्ञान के परे है, सचमुच उन्होंने ही उसे जाना।

मनन—यह मन्त्र दूसरे मन्त्र को विशेष रूप से स्पष्ट करता है। तीसरे और चौथे पद से भाव आसानी से समझ में आता है। 'विजानताम्' के दो अर्थ हो सकते हैं—एक यह है कि विशेष करके जो जानता है अथवा जो नहीं जानता अर्थात् वह परब्रह्म परमात्मा उन लोगों के लिए अज्ञात अर्थात् न जाना हुआ है जो कि अज्ञानी हैं अथवा जो विशेष रूप से जानते हैं, वे समझते हैं कि परब्रह्म परमात्मा अविज्ञात ही है अर्थात् न उसको किसी ने अभीतक जाना है और न आगे जान सकता है। चौथे पद का भी ऐसा ही भाव समझा जा सकता है। इसी प्रकार पहले पद का अर्थ यह है कि जिसने परब्रह्म परमात्मा को इस प्रकार समझ लिया कि वह जाना नहीं जा सकता, उसने उसको जान लिया और जिसने जाना कि मैंने जान लिया, उसने जाना ही नहीं।

He, who has thought over Brahma, knows that he does not know Brahma, but he, who has not pondered over

Brahma, thinks that he knows Brahma. Those who are well-versed in knowledge, for them Brahma is unkown, but for those, who have only little knowledge, Brahma is believed to be known to them.

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥ ४ ॥

पदच्छेद—प्रतिबोधविदितम्, मतम्, अमृतत्वम्, हि, विन्दते। आत्मना, विन्दते, वीर्यम्, विद्यया, विन्दते अमृतम् ॥ ४ ॥

अन्वय—(येन तत् ब्रह्म) प्रतिबोधविदितम् (इति) मतम् (सः) हि अमृतत्वम् विन्दते। (सः) आत्मना वीर्यं विन्दते विद्यया (च) अमृतम् (विन्दते) ॥ ४ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(येन)	(जिसने)	विन्दते	प्राप्त होता है
(तद् ब्रह्म)	(उस ब्रह्म को)	(सः)	(वह)
प्रतिबोधवि-	'बोधं बोधं प्रति विदितं	आत्मना	आत्मा के द्वारा
दितम्	भवति' प्रत्येक बोध	वीर्यं	वीर्य बल और शक्ति
	अर्थात् ज्ञान में जो		को
	जाना हुआ होता है	विन्दते	प्राप्त करता है
	अथवा जिसके द्वारा	विद्यया	विद्या से
	प्रत्येक ज्ञान का बोध	(च)	(और)
	होता है	अमृतम्	अमृत को अर्थात्
(इति)	(इस प्रकार)		अज्ञानान्धकार को
मतम्	समझा		निवृत्त करने के
(सः)	(वह)		सामर्थ्य को
हि	निश्चय करके	विन्दते	प्राप्त करता है
अमृतत्वम्	अमृतत्व को		

भावार्थ—प्रत्येक ज्ञान में, जिस ज्ञान के द्वारा प्रत्येक वस्तु का ज्ञान होता है और जिस ज्ञान के बिना वस्तु के होते हुए भी ज्ञान नहीं होता, उस परमात्मा को जो मनुष्य ज्ञानस्वरूप ही समझता है, वह अमृतत्व को प्राप्त करता है अर्थात् अमर हो जाता है। आत्मा के द्वारा आत्मज्ञान से मनुष्य वीर्य अर्थात् बल यानी शक्ति को प्राप्त करता है। विद्या से तो केवल अमृतत्व प्राप्त करने की शक्ति ही प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

व्याख्या—यह मन्त्र उस परब्रह्म परमात्मा को विशेष रूप से समझाने का प्रयत्न करता है। मन्त्र इस प्रकार समझाने का प्रयत्न करता है कि मनुष्य को अनेक प्रकार का ज्ञान होता है जैसे मैं मनुष्य हूँ, ब्राह्मण हूँ, वह क्षत्रिय है, वह वैश्य है इत्यादि इत्यादि। इसमें कुछ ज्ञान का विषय है, कोई ज्ञाता है और कुछ ज्ञान है। ज्ञाता और विषय में भेद है, परन्तु ज्ञान सब में एक ही है। उस ज्ञान के बिना न तो कोई ज्ञाता अपने को जान सकता है और न किसी विषय को ही जान सकता है। ज्ञान में कुछ तारतम्य है अर्थात् कमी वेशी है। ज्ञान में कहीं कमी है और कहीं अधिकता है, परन्तु ज्ञान एक ही वस्तु है। जैसे प्रकाश चाहे सूर्य का हो, चाहे एक दीपक का हो, चाहे लीन होती हुई किसी चिनगारी का हो। उसी प्रकार ज्ञान में एकत्व है। उस विषय के ज्ञान के द्वारा उस परब्रह्म परमात्मा का कुछ आभास मिलता है। प्रत्येक ज्ञान में उसी की आभा दीख पड़ती है। जैसा कि गुरु ने अपने शिष्यों को समझाया है कि जो भगवान् को प्रत्येक ज्ञान में समझ सकता है, जान सकता है और देख सकता है वह उसको जानता है। इस तरह जिसने भगवान् को समझ लिया, उसने अमृतत्व को प्राप्त कर लिया। जिसको ऐसा ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मज्ञान प्राप्त हो गया, वह समर्थ हो गया। अब इसके बाद विद्या के द्वारा वह अमृत को प्राप्त कर सकता है। आत्मज्ञान से मनुष्य में धैर्य आदि गुणों की प्राप्ति होती है जिनसे कि वह संसार में इस लोक और परलोक और वेद के सभी अंगों को जान लेता है और संसार के यथार्थ रूप को जान कर परमपद को भी जान लेता है। जो लोक को नहीं

जानता अर्थात् जो लोकव्यवहार में निपुण नहीं है, वह चाहे जितना बड़ा श्रोत्रिय हो, ब्रह्मनिष्ठ हो वह अधूरा ही है और जो लोकव्यवहार में अत्यन्त निपुण है, वेद को नहीं जानता, ब्रह्मनिष्ठा को भी नहीं जानता कि क्या वस्तु है, उसके बावत तो कुछ कहना ही नहीं है ! वह शोचनीय है ।

Brahma can be realised with reference to every single act of consciousness. If so realised, then Brahma has been, in fact, realised. Such a man gets immortality, By the realisation of self, he gets all powers, but by all knowledge he gets immortality.

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ ५ ॥

पदच्छेद—इह, चेत्, अवेदीत्, अथ, सत्यम्, अस्ति, न, चेत्, इह, अवेदीत्, महती, विनष्टिः, । भूतेषु, भूतेषु, विचित्य, धीराः प्रेत्य, अस्मात्, लोकात्, अमृताः भवन्ति ॥ ५ ॥

अन्वय—(मनुष्यः) चेत् इह (एव) अवेदीत् अथ (तत्) सत्यम् अस्ति (सः) चेत् इह (एव) न अवेदीत् (ततः) (तस्य) महती विनिष्टिः (भवति) (अतः) धीराः भूतेषु भूतेषु (तत् ब्रह्म) विचित्य अस्मात् लोकात् प्रेत्य अमृताः भवन्ति ॥ ५ ॥

शब्द	अर्थ
(मनुष्यः)	(मनुष्य ने)
(ब्रह्म)	(ब्रह्म को)
चेत्	यदि
इह (एव)	इस संसार में (ही)
अवेदीत्	जान लिया
अथ	तब तो
तत्	वह
सत्यम्	ठीक सत्य
अस्ति	है

शब्द	अर्थ
सः	उसने
चेत्	यदि
इह	इस संसार में
(एव)	(ही)
न	नहीं
अवेदीत्	जान लिया
(ततः)	(तब)
(तस्य)	(उसकी)

शब्द	अर्थ
महती	बहुत बड़ी
विनिष्टः	हानि
(भवति)	(होती है)
(अतः)	(इसलिए)
धीराः	बुद्धिमान् अर्थात् धीर मनुष्य
भूतेषु भूतेषु	प्रत्येक प्राणी में और भूतों में
भूत	पंच भूत, जितनी संसार में वस्तुयें हैं वे सब
(तत् ब्रह्म)	(उस परब्रह्म परमात्मा को)
विचित्य	विशेष रूप से ढूंढ कर
अस्मात्	इस
लोकात्	लोक से
प्रेत्य	मर कर
अमृताः	अमर
भवन्ति	हो जाते हैं

भावार्थ— मनुष्य यदि इस संसार में रहता हुआ मरने के पहले ही उस परमात्मा को इस प्रकार जान लेता है कि वह ज्ञान स्वरूप ही है, तब तो ठीक है। उसका कल्याण हो ही गया। परन्तु यदि इस शरीर के रहते हुए मरने के पहले ही उसने इस बात को नहीं जान लिया कि उस परब्रह्म परमात्मा का ऐसा स्वरूप है, तब तो उसके लिए यह बड़ी भारी हानि है क्योंकि उसको बार-बार संसारचक्र में अनेक योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा। अतः जो धीर पुरुष हैं, जो बड़ी-बड़ी विपत्ति पड़ने पर भी धीरज को नहीं खोते प्रत्येक प्राणी में, भले-बुरे मनुष्यों में अहिंसक जन्तुओं से तथा घोर हिंसा करने वाले जीवों में, जल आदि पंचभूतों में, सभी चराचर जगत में उसी एकत्वप्राप्त परब्रह्म को देख लेते हैं अर्थात् प्राप्त कर लेते है, वे धीर पुरुष इस लोक से अर्थात् इस संसार से मरने के बाद अ.र हो जाते हैं।

व्याख्या—इस मन्त्र में गुरु इस बात पर अधिक बल देते हैं कि जीवन में ही जो कुछ जान ले, वही सचमुच सत्य है और यदि इस जीवन में न जान सका, तो उसका यह जन्म व्यर्थ हो गया। अन्त में यह कहते हैं कि मनुष्य धीरज के साथ प्रत्येक भूत में अर्थात् प्राणी जीवमात्र में पंचभूतों में

और उनके सभी विकारों में उस परमात्मा को विशेष रूप में देखें, अलग करे। जितने भूत हैं, जितने प्राणी हैं, जो कुछ भी हैं, उनमें से अनित्य वस्तुओं को निकाल कर जो वस्तु नित्य है और सभी में ओत-प्रोत है अर्थात् सब में भीतर-बाहर भरा हुआ है, उसको देख ले। वह इस संसार से मरकर भी अमर हो जाता है।

If one has known Brahma as such in his life-time, then he has really achieved the object; but if he has not so known Brahma in this very life, then he has sustained a very great loss. Therefor, the sober and wise men find Brahma in every single object and having so known as different from this world, they attain immortality after this worldly existence.

तृतीय खण्ड

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त ॥ २ ॥

पदच्छेद—ब्रह्म, ह, देवेभ्यः विजिग्ये, तस्य, ह, ब्रह्मणः, विजये, देवाः, अमहीयन्त ॥ १ ॥

अन्वय—ह, ब्रह्म, देवेभ्यः, विजिग्ये, (तत्) ह, तस्य, ब्रह्मणः, विजये, देवाः अमहीयन्त ॥ १ ॥

शब्द	अर्थ
ह	ऐसा कहा जाता है कि, यह बात प्रसिद्ध है कि
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा ने
देवेभ्यः	देवताओं के लिए
विजिग्ये	विजय प्राप्त की
(ततः)	(तब)
ह	ऐसा कहा जाता है
तस्य	उस
ब्रह्मणः	परब्रह्म परमात्मा के
विजये	विजय में (विजय के कारण)
देवाः	देवताओं ने
अमहीयन्त	गौरव को प्राप्त किया, पूज्य हुए

भावार्थ—ऐसा कहा जाता है कि देवताओं और असुरों में देवासुर-संग्राम हुआ। उसमें परब्रह्म परमात्मा अर्थात् ईश्वर की कृपा से देवताओं ने विजय प्राप्त की। फिर उसके बाद ऐसा कहा जाता है कि उस विजय के कारण देवताओं ने उस परब्रह्म परमात्मा अर्थात् ईश्वर को भूल कर ऐसा अर्थात् इस प्रकार अभिमान किया कि यह विजय हम लोगों ने ही प्राप्त की है और जो यह महिमा और गौरव हमने प्राप्त किया है, उसके कारण भी हम ही हैं।

व्याख्या—इस तीसरे खण्ड में कुछ आख्यायिका के रूप में मन्त्र या

उपनिषद् उपदेश कर रहा है। इसमें देवताओं की विजय, उसके कारण से उनका अभिमान और ब्रह्म द्वारा उस अभिमान का निराकरण किया गया है। कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि शरीर में सुप्रवृत्ति और कुप्रवृत्ति भगवान् के प्रति रुझान अथवा कामनाओं के प्रति मन की झुकान, यही दो बातें संसार में देखी जाती हैं। मन बुद्धि से प्रेरित होकर इन्द्रियों को अपने वश में करने का प्रयत्न करता है। यही जीव की विजय है और जब मन विषय-प्रेमी इन्द्रियों के वश में होकर कर्म करता है, तब यही जीव की हार होती है। जीव की प्रवृत्ति जब भगवान् की ओर होती है, तब उसकी विजय होती है। पर जीव की प्रवृत्ति का कारण वही परब्रह्म परमात्मा है। जीव का यह अभिमान कि हमने मन इत्यादि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है; उस अभिमान का नाश हो जाने से पतित होने से यह बच जाता है। कुछ ऐसा भाव सा जान पड़ता है।

ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की; परन्तु उसके कारण जो महिमा देवताओं की हो गई, उसके कारण केवल ब्रह्म ही थे, देवता नहीं थे। यद्यपि महिमा उनकी हो गई।

It is said that Brahma achieved victory for the Devas and in that victory of the Brahma, the Devas became glorious.

त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति। तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति ॥ २ ॥

पदच्छेद—ते, ऐक्षन्त, अस्माकम्, एव, अयम्, विजयः, अस्माकम् एव, अयम्, महिमा, इति। तत्, ह, एषाम्, विजज्ञौ, तेभ्यः, ह, प्रादुर्बभूव, तत्, न व्यजानत, किम्, इदम्, यक्षम्, इति ॥ २ ॥

अन्वय—ते (देवाः) अयम् विजयः अस्माकम् एव अस्ति अयम् महिमा (अपि च) अस्माकम् एव (अस्ति) इति ऐक्षन्त। (तत् ब्रह्म) ह तत् एषाम्

(देवानाम् मिथ्याऽहंकाररूपम् अभिप्रायम्) विजज्ञौ (तत्) ह (ब्रह्म) तेभ्यः (देवेभ्यः) प्रादुर्बभूव (देवाः) (तत्) इदम् यक्षम् किम् (अस्ति) इति न व्यजानत ॥ २ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
ते (देवाः)	वे (देवता)	(देवानाम्)	(देवताओं के)
अयम्	यह	(मिथ्याहंकार-रूपम्)	(मिथ्या अहंकार रूप)
विजयः	विजय		
अस्माकम्	हमारी	(अभिप्रायम्)	(अभिप्राय को)
एव	ही	विजज्ञौ	जान लिया
(अस्ति)	(है)	(तत्)	(वह)
अयम्	यह	ह	ऐसा कहा जाता है
महिमा	बड़प्पन	(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
(अपि)	(भी)	तेभ्यः	उन
(च)	(और)	(देवेभ्यः)	(देवताओं के लिए)
अस्माकम्	हमारी	प्रादुर्बभूव	प्रकट हो गया
एव	ही	(देवाः)	(देवताओं ने)
(अस्ति)	(है)	तत्	उसको
इति	यह	इदम्	यह
ऐक्षन्त	मानने लगे	यक्षम्	यक्ष
(तद् ब्रह्म)	(उस ब्रह्म ने)	किम् (अस्ति)	कौन (है)
ह	ऐसा कहा जाता है	न	नहीं
तत्	उस	व्यजानत	जाना
एषाम्	इन		

भावार्थ—जब परब्रह्म परमात्मा की कृपा से देवासुर-संग्राम में देवता जीत गये, तब देवताओं ने ऐसा समझा, उनको ऐसा अहंकार हो गया कि हम लोगों की यह जो विजय है और उसके कारण हमको जो यह महिमा,

यह गौरव प्राप्त हुआ है, वह हमारे ही पुरुषार्थ का फल है। हम ही इसके कारण हैं। इस प्रकार वे भगवान् को भूल गये, परन्तु परब्रह्म परमात्मा को इस बात का पता चल गया कि देवताओं को जो अहंकार हुआ है इसके कारण इनका अधःपतन ही होगा। अतः उन देवताओं के कल्याण के लिए भगवान् ने साकार रूप धारण किया और उनके सामने प्रकट हुए। देवताओं ने उस भगवान् के रूप को देखा, कुछ भयभीत हुए और सोचने लगे कि यह तो कोई एक बहुत विशेष पूज्य महात्मा स्वरूप हैं, परन्तु यह न जान सके कि यह कौन है।

व्याख्या—उन देवताओं ने यह सोचा कि यह विजय हमारी ही हुई है और यह महिमा भी हमारी ही है। इसमें श्रेय हम लोगों को है। हम ही सबके कारण हैं। वे भगवान् को भूल गये। कहा जाता है कि परब्रह्म परमात्मा इस बात को जान गये। अतः उनके घमण्ड को दूर करने के लिए, उनके कल्याण के लिए, वे एक अत्यन्त, अद्भुत यक्ष के रूप में प्रकट हुए। देवताओं ने देखा कि यह तो कोई विचित्र परमपूज्य वस्तु है, परन्तु यह क्या है, यह न जान सके और उनकी जानने की आकांक्षा बढ़ी।

The Devas were inclined to think that it was their victory and it were they who have attained glory. Brahma came to know of gods' pride. Brahma manifested itself for their benefit but the Devas could not know who that Venerable Yaksha was.

तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति ॥ ३ ॥

पदच्छेद—ते, अग्निम्, अब्रुवन्, जातवेद, एतत्, विजानीहि, किम् इदम्, यक्षम्, इति, तथा इति, ॥ ३ ॥

अन्वय—ते, (इन्द्रप्रमुखाः देवाः) अग्निम् अब्रुवन् (हे) जातवेद इदम् यक्षम् किम् (अस्ति) इति एतत् विजानीहि। [तदा] (अग्निः) (तान्) (देवान्) तथा (अस्तु) इति (अब्रवीत्) ॥ ३ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
ते	उन्होंने	इदम्	यह
(इन्द्रप्रमुखाः	(ऐसे देवता जिनमें	यक्षम्	यक्ष जो पूज्य है
देवाः)	इन्द्र श्रेष्ठ हैं)	किम्	क्या
अग्निम्	अग्नि से	(अस्ति)	(है)
अब्रुवन्	कहा	इति	ऐसा
(हे) जातवेद	(हे) जिनसे ज्ञान	(तदा)	(तब)
	पैदा होता है, जो ज्ञान	(अग्निः)	(अग्नि ने)
	स्वरूप है अर्थात् अग्नि	(तान्)	(उन)
एतद्	यह	(देवान्)	(देवताओं से)
विजानीहि	जानो, पता लगाओ,	तथा	ऐसा ही करूँगा
	विशेष रूप से जान	इति	यह
	लो कि	(अब्रवीत्)	(कहा)

भावार्थ—उस अति अद्‌भुत प्रकाशमान, पूज्य यक्ष को देखकर देवताओं ने अग्निदेव से, जो कि देवताओं के मुखस्वरूप हैं और जो देवताओं के आगे-आगे चलते हैं, कहा, "हे जातवेद ! आप तो सर्वज्ञ हैं, आप जाइए और पता लगाइए कि यह जो अद्‌भुत वस्तु देख पड़ती है, यह क्या है ?" यह सुनकर अग्निदेव ने अहंकारपूर्वक कहा कि बहुत अच्छा अभी जाता हूँ और पता लगाकर आता हूँ।

व्याख्या—देवताओं का मुख अग्नि कहा जाता है। देवताओं का होता अर्थात् बुलाने वाला अग्नि कहा जाता है। देवताओं के लिए जो हवन किया जाता है, वह अग्नि में ही किया जाता है और समझा जाता है कि सब देवता अपना-अपना भाग अग्नि के द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। जितना कुछ प्रकाश संसार में है उसका मूल कारण अग्नि ही है। सूर्य भगवान् अग्नि के इन्धन कहे जाते हैं—जैसा कि 'तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः' (मुण्डकोपनिषद् २-१-१५) में कहा गया है, अर्थात् उसी परब्रह्म परमात्मा से इस अग्नि

की उत्पत्ति हुई और जो यह सूर्य है वह उस अग्नि का ईन्धन हैं। प्रकाश ज्ञान से प्राप्त होता है। अग्नि भी ज्ञानस्वरूप समझा जाता है। इसका नाम जातवेदा है अर्थात् सर्वज्ञ के समान।

देवताओं ने ऐसे अग्निदेव से प्रार्थना की कि हे अग्नि! हे जातवेद! आप इसका पता लगाइए कि यह जो यक्ष सामने है, यह कौन है। अग्नि ने कहा कि बहुत अच्छा, अभी हम जाते हैं और पता लगाकर बतायेंगे।

They, the Gods, asked the Fire God to find out as to who that Yaksha was. The Fire God said that he would do so.

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा अहमस्मीति ॥ ४ ॥

पदच्छेद—तत्, अभ्यद्रवत्, तम्, अभ्यवदत्; कः, असि, इति, अग्निः, वा, अहम्, अस्मि, इति, अब्रवीत्, जातवेदाः, वा, अहम्, अस्मि, इति ॥ ४ ॥

अन्वय—(इति देवान् कथयित्वा सः अग्निः) तत् (यक्षम् प्रति) अभ्यद्रवत्। तम्, अग्निम् (यक्षम्) अभ्यवदत्। (त्वम्) कः असि (तदा) (अग्निः) अहम् अग्निः वा अस्मि इति अब्रवीत् जातवेदाः वा अस्मि इति (अब्रवीत्) ॥ ४ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(इति देवान्)	(ऐसा देवताओं से)	अग्निम्	अग्निदेव से
(कथयित्वा)	(कहकर)	(यक्षम्)	(यक्ष ने)
(सः अग्निः)	(वह अग्नि)	अभ्यवदत्	पूछा
तत्	उस	(त्वं)	(तुम)
(यक्षम् प्रति)	(यक्ष के पास)	कः	कौन
अभ्यद्रवत्	तेजी से दौड़कर गये	असि	हो
तम्	उस	(तदा)	(तब)

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(अग्नि)	(अग्नि ने)	अब्रवीत्	कहा
अहम्	मैं	जातवेदा:	जातवेदा नाम वाला
अग्नि:	अग्नि	वा	निश्चय करके
वा	निश्चय करके	अस्मि	हूँ
अस्मि	हूँ	(इति च)	(यह भी)
इति	यह	(अब्रवीत्)	(कहा)

भावार्थ—ऐसा कहकर अग्निदेव बड़े वेग से दौड़कर यक्ष के पास गये। उनको देखते ही यक्ष ने पहले ही पूछा कि आप कौन हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में अग्निदेव ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि मैं अग्नि हूँ—यह तो सभी लोग जानते हैं। इसके बाद फिर कहा कि मैं जातवेदा हूँ—सर्वज्ञ हूँ, यह भी सब लोग जानते हैं।

व्याख्या—अग्निदेव विजय और महिमा को अपनी समझते हुए उसी क्षण उस यक्ष के पास पहुँच गये। परन्तु इसके पहले कि वह कुछ पूछ सकें, कह सकें या बोल सकें, यक्ष ने पूछा कि आप कौन हैं ? अग्निदेव ने सोचा कि हमको तो सभी लोग जानते हैं। इसलिए कुछ अभिमान के साथ कहा कि मैं अग्नि हूँ, यह बात सब लोग जानते हैं मेरा दूसरा नाम जात-वेदा भी है।

The Fire God moved to the Yaksha who asked the Fire God as to who he was. There-upon the Fire God said that he was the Fire God, the well-known 'JATA-VEDA' i e the source of all knowledge.

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ ५ ॥

पदच्छेद—तस्मिन्, त्वयि, किम्, वीर्यम्, इति, अपि, इदम्, सर्वम्, दहेयम्, यत्, इदम्, पृथिव्याम्, इति ॥ ५ ॥

अन्वय—तस्मिन् त्वयि (अग्नौ) किम् वीर्यम् (अस्ति) इति (ब्रह्मण:) (वचनम्) (श्रुत्वा) (अग्नि:) (पुन:) (सगर्वम्) (आह) पृथिव्याम् यत् इदम् (किञ्चित्) (तत्) (सर्वम्) अपि दहेयम् ।

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(ब्रह्म पुन:	(परब्रह्म परमात्मा	(पुन:)	(फिर)
पृच्छति)	फिर पूछते हैं)	(सगर्वम्)	(गर्व के साथ)
तस्मिन्	ऐसे	(आह)	(कहा)
त्वयि	तुम में	पृथिव्याम्	पृथिवी में
किम्	क्या	यत् किंचित्	जो कुछ भी
वीर्यम् (अस्ति)	सामर्थ्य (है)	इदम्	यह
इति	यह	(अस्ति)	(है)
(ब्रह्मण:	(परब्रह्म परमात्मा के	तत् सर्वम्	उस सबको
वचनम् श्रुत्वा)	वचन को सुनकर)	(अपि)	(भी)
(अग्नि:)	(अग्नि)	दहेयम्	जला सकता हूँ

भावार्थ—जब अग्नि ने बड़े गर्व के साथ यह कहा कि मैं अग्नि हूँ तथा सर्वज्ञ जातवेदा हूँ, इस बात को सब लोग जानते हैं। अग्नि के ऐसे वचन सुनकर परब्रह्म परमात्मा ने पूछा कि इस प्रकार प्रसिद्ध जो आप हैं, आपका सामर्थ्य क्या है ? अर्थात् आप में क्या शक्ति है ? इस प्रश्न को सुनकर अग्निदेव ने उसी प्रकार गर्व से कहा कि पृथ्वी में तथा और भी सभी जगह जो कुछ है, उन सबको मैं जलाकर राख कर सकता हूँ ।

व्याख्या—यक्ष के रूप में परब्रह्म परमात्मा अग्निदेव के अभिमान भरे शब्दों में किसी प्रकार की बाधा न देते हुए मानो आदर से पूछ रहे हैं। उन्होंने कहा कि अच्छा, हमने जान लिया । ठीक है, अब आप यह बतलाइए कि आपकी शक्ति क्या है ? आप क्या कर सकते हैं ? अग्निदेव ने उत्तर दिया कि इस संसार में पृथ्वी पर जो कुछ है, यदि मैं चाहूँ तो उन सबको जला सकता हूँ ।

Yaksha asked the Fire Gad as to what who the most that he could do. The Fire God asserted that he could burn to ashes all that existed on the earth.

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति । तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ ६ ॥

पदच्छेद—तस्मै, तृणम्, निदधौ, एतत्, दह, इति, तत्, उपप्रेयाय, सर्व-जवेन, तत्, न, शशाक, दग्धुम्, सः, ततः, एव, निववृते, न, एतत्, अशकम्, विज्ञातुम्, यत्, एतत्, यक्षम्, इति ॥ ६ ॥

अन्वय—(ततः) (ब्रह्म) तस्मै (अग्नये) तृणम् निदधौ (आह) (च) (एतत्) दह इति । (सः) (अग्निः) सर्व जवेन तद (तृणम्) दग्धुम् (तत्) उप-प्रेयाय (परन्तु) तत् (तृणम्) दग्धुम् न शशाक, (तदा) सः अग्निः ततः एव निववृते, (तान्) (देवान्) (आह) (च) यत् एतत् यक्षम् अस्ति (तत्) एतत् (अहम्) विज्ञातुम् न अशकम् ॥ ६ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(ततः ब्रह्म)	(तब परब्रह्म परमात्मा ने	तत्	उस (तिनके) के
		उपप्रेयाय	पास पहुँच गए
तस्मै	उस अग्नि के लिये	(परन्तु)	(लेकिन)
तृणम्	तिनके को	सर्व जवेन अपि	पूरे वेग से भी
निदधौ	रख दिया	तत्	उस
आह च	और कहा	(तृणम्)	(तिनके को)
एतत्	इसको	दग्धुम्	जलाने में
दह	जलाओ	न	नहीं
इति	यह	शशाक	समर्थ हुए
(तदा)	(तब)	ततः	वहाँ से
(सः)	(वह अग्नि)	एव	ही

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
निववृते	लौट आये	तत्	उस
(तान् आह)	(उन देवताओंसे कहा)	एतत्	इसको
(च)	(और)	अहम्	मैं
यत्	जो	विज्ञातुम्	जानने में
एतत्	यह	न	नहीं
यक्षम् (अस्ति)	यक्ष (है)	अशकम्	समर्थ हुआ

भावार्थ—अग्नि के उन वचनों को सुनकर कि 'मैं सब कुछ जला सकता हूं' भगवान् ने उस अग्निदेव के सामने एक तिनका रख दिया और कहा, 'भला इस तिनके को तो जला दो ।' तब अग्निदेव ने उसको जलाने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति को लगा दिया, परन्तु उस तिनके को वे जला न सके । अपनी शक्ति को इस तरह कुण्ठित हुई देखकर वे बड़े लज्जित हुए और उन परब्रह्म परमात्मा से और कोई बातचीत न करके वहाँ से लौट आए तथा उन देवताओं से कहा कि हम तो उस यक्ष के सम्बन्ध में कुछ नहीं जान सके कि वह कौन है ।

व्याख्या—परब्रह्म परमात्मा ने अग्निदेव के सामने उनके घमण्ड को चूर्ण करने के लिए एक छोटा सा तिनका जो कि पूर्णरूप से सूखा था, रख दिया और कहा कि आप इसी तिनके को जला दीजिए । अग्निदेव ने इसको अपना अपमान समझकर पहले थोड़ी शक्ति लगाई । जब न जला सके तो सारी शक्ति धीरे-धीरे लगा दी परन्तु, उसको जला न सके । अग्निदेव को इतनी लज्जा हुई कि वे उस यक्ष से किसी प्रकार की बातचीत न कर सके, कुछ पूछ भी न सके । वहीं से लौट आये और आकर उन्होंने देवताओं से यही कह दिया कि वह यक्ष कौन है, इसका पता हम न लगा सके ।

The Yaksha, on hearing the reply of the Fire God, put a piece of straw before the Fire God and asked him to burn it. The Fire God approached the straw with all swiftness and force at his command, but could not burn that piece

of straw. Thereupon the Fire God returned and told the gods that he could not find out as to who that Yaksha was.

अथ वायुमब्रुवन्वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ ७ ॥

पदच्छेद—अथ, वायुम्, अब्रुवन्, वायो, एतत्, विजानीहि, किम्, एतत्, यक्षम्, इति, तथा, इति ॥ ७ ॥

अन्वय—अथ (ते देवाः) वायुम्, अब्रुवन् (हे) वायो ! (त्वम्) एतत् यक्षम् किम् एतत् इति विजानीहि (तदा) (वायुः) तथा (करिष्यामि) इति (अब्रवीत्) ॥ ७ ॥

शब्द	अर्थ
अथ	इसके बाद
(ते देवाः)	(उन देवताओं ने)
वायुम्	वायु को
अब्रुवन्	कहा
वायो	हे वायु देवता
त्वम्	तुम
एतत्	यह
यक्षम्	यक्ष
किम् इति	कौन है ऐसा

शब्द	अर्थ
एतत्	यह
विजानीहि	विशेष रूप से पता लगाओ
तदा	तब
वायुः	वायु ने
तथा	वैसा ही
(करिष्यामि)	(करूँगा)
इति	यह
(अब्रवीत्)	(कहा)

भावार्थ—तब सब देवताओं ने वायु से कहा, 'हे वायु देवता ! तुम इस बात का विशेष रूप से पताकर आओ कि यह यक्ष कौन है।' वायु देवता ने कहा, 'बहुत अच्छा, जैसा आप लोग कहते हैं, वैसा ही करूँगा।'

व्याख्या—मन्त्र ७-८-९-१० में यह कहा गया है कि जब अग्निदेव यक्ष का कुछ पता न लगा सके और लौट आए, तो सब देवताओं ने वायुदेव से कहा कि अब आप जाइए, पता लगाइए। वायुदेव गए। यक्ष ने उनका नाम

और सामर्थ्य पूछा और वायुदेव के सामने एक छोटा सा तिनका रखा तथा उड़ाने के लिए कहा। पर वे न उड़ा सके और लौट आए और देवताओं से कह दिया कि हम भी पता न लगा सके।

अग्निदेव के बाद वायुदेव के भेजने से ऐसा जान पड़ता है कि देवताओं ने यह समझ रखा था कि कि अग्नि से वायु का सामर्थ्य अधिक है। इसमें प्रमाण भी है 'वायोरग्नि:' अर्थात् वायु से अग्नि का जन्म हुआ। वायु कारण है अग्नि कार्य। पृथिवी, जल और अग्नि एक दूसरे से अधिक सूक्ष्म होते जाते हैं, परन्तु प्रकाश में विशेषता होती जाती है। अग्नि के दो गुण कहे गये हैं—प्रकाश और ताप। ताप थोड़ी देर तक कार्य करता है। परन्तु प्रकाश उससे कई गुना अधिक दूर से अपना कार्य करता है। अग्नि में प्रकाश अपना गुण हैं और ताप वायु के संयोग से होता है। वायु का गुण स्पर्श है, वह अग्नि से अधिक सूक्ष्म है। उसमें अधिक सामर्थ्य होना उचित ही है। अस्तु अग्निदेव से वायुदेव का सामर्थ्य अधिक है। प्रत्यक्ष रूप से यह देखा जाता है कि अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए वायु से काम लिया जाता है। इसलिए हमारे धर्मशास्त्र में अग्नि और वायु का साहचर्य अर्थात् साथ-साथ चलना या मित्रता मानी जाती है।

The Gods then asked the Air God to find out as to who that Yaksha was and the Air God replied that he would do so.

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥ ८ ॥

पदच्छेद—तत्, अभ्यद्रवत्, तम्, अभ्यवदत्, क: असि, इति, वायु:, वा, अहम्, अस्मि, इति, अब्रवीत्, मातरिश्वा, वा, अहम्, अस्मि; इति ॥ ८ ॥

अन्वय—(वायु:) तत् (यक्षम् प्रति) अभ्यद्रवत्, तम् (वायुं यक्षम्) अभ्यवदत् क: असि इति (वायु:) अब्रवीत् अहं वायु: वा अस्मि इति, अहम् वा मातरिश्वा अस्मि इति ॥ ८ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(वायुः)	(वायु देवता)	अब्रवीत्	कहा
तत्	उस	अहम्	मैं
(यक्षम् प्रति)	(यक्ष के पास)	वायुः	वायु
अभ्यद्रवत्	दौड़कर गए	वा	निश्चय करके
तम्	उस	अस्मि	हूँ
(वायुम्)	(वायु से)	इति	यह
(यक्षम्)	(यक्ष ने)	अहम्	मैं
अभ्यवदत्	कहा	वा	निश्चय करके
त्वं	तुम	मातरिश्वा	अन्तरिक्ष में चलने वाला
कः असि	कौन हो		
इति	यह	अस्मि	हूँ
(वायुः)	(वायु ने)	इति	यह

भावार्थ—देवताओं से ऐसी प्रतिज्ञा करके वायुदेव उस यक्ष के पास तेजी से दौड़कर गए। यक्ष ने उन वायुदेव को इस प्रकार आया हुआ देखकर पूछा, आप कौन हैं।' वायुदेव ने उत्तर दिया कि मैं वायु हूँ। इस बात को सभी जानते हैं और मैं मातरिश्वा भी हूँ। इस बात को भी सब लोग जानते हैं। मैं अन्तरिक्ष लोक में भी चलता रहता हूँ।

Saying this, the Air God ran to the Yaksha who asked the Air God as to who he was. There-upon, the Air God said that he was Air God, the well-known MATARISHVA, i. e. one who is always moving in space.

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥ ९ ॥

पदच्छेद—तस्मिन्, त्वयि, किं, वीर्यम् इति, अपि, इदम्, सर्वम्, आददीयम्, यत्, इदम्, पृथिव्याम्, इति ॥ ९ ॥

अन्वय—(यक्षम् पुनः अपृच्छत्) तस्मिन् त्वयि किं वीर्यम् (अस्ति) इति । (वायुः अवदत्) यत् इदम् सर्वम् पृथिव्याम् (अस्ति) इदम् (सर्वम्) अपि आददीय इति ॥ ९ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यक्षम्	यक्ष ने	यत्	जो
(पुनः)	(फिर)	इदम्	यह
(अपृच्छत्)	(पूछा)	सर्वम्	सब कुछ
तस्मिन्	उस	पृथिव्याम्	पृथिवी में
त्वयि	तुममें	(अस्ति)	(है)
किम्	क्या	इदम्	इस
वीर्यम्	सामर्थ्य	सर्वम्	सबको
(अस्ति)	(है)	अपि	भी
इति	यह	आददीय	ले सकता हूँ, उठा
(वायुः)	(वायु ने)		(उड़ा) सकता हूँ
(अवदत्)	(कहा)	इति	यह

भावार्थ–वायुदेव के इस प्रकार उत्तर देने पर यक्ष ने उन वायुदेव से फिर पूछा, आप जो इस प्रकार वायु और मातरिश्वा हैं, आप में क्या सामर्थ्य है ? वायुदेव ने कहा कि इस पृथिवी में जो कुछ भी है, सबको ग्रहण कर सकता हूँ । यानी उड़ा ले जा सकता हूँ ।

The Yaksha asked the Air God as to what was the most that he could do. The Air God asserted that he could lift and sweep away all that existed on earth.

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १० ॥

पदच्छेद—तस्मै, तृणं, निदधौ, एतत्, आदत्स्व, इति, तत्, उपप्रेयाय,

सर्वजवेन, तत्, न, शशाक, आदातुम् । सः, ततः, एव निववृते, न, एतत्, अशकम्, विज्ञातुम्, यत्, एतत्, यक्षम्, इति ॥ १० ॥

अन्वय—(तदा, यक्षम्) तस्मै, तृणं, निदधौ, (आह, च) एतत् (तृणं) आदत्स्व, इति, (तदा वायुः) तत् (तृणं) सर्वजवेन, उपप्रेयाय, (परन्तु सः वायुः) तत् (तृणम्) आदातुं न शशाक । (तदनन्तरम्) सः (वायुः) ततः, एव, निववृते (आह च) यत्, एतत् यक्षम् (अस्ति) (तत्) एतत्, विज्ञातुम्, न, अशकम् इति ॥ १० ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(तदा)	(तब)	(तृणम्)	(तिनके को)
(यक्षम्)	(यक्ष ने)	आदातुम्	उठाने या उड़ाने को
तस्मै	उन (वायु) के लिए	न	नहीं
	(अर्थात् उनके सामने)	शशाक	समर्थ हुआ
तृणम्	एक तिनके को	(तदनन्तरम्)	(उसके बाद)
निदधौ	रख दिया	सः	वह वायु
(आह च)	(और कहा)	ततः	वहाँ से
त्वम्	तुम	एव	ही
आदत्स्व	ग्रहण करो	निववृते	लौट आया
इति	यह	आह च	कहा और
(तदा)	(तब)	यत्	जो
वायुः	वायु देवता	एतत्	यह
तत्	उस	यक्षम् (अस्ति)	यक्ष (है)
तृणम्	तिनके के	एतत्	इसे
उपप्रेयाय	पास गए	विज्ञातुम्	जानने को
(परन्तु)	(परन्तु)	न अशकम्	मैं समर्थ नही हो
सर्वजवेन	पूरी शक्ति लगाकर		सका
तत्	उस	इति	यह

भावार्थ—जब वायुदेवने अपने सामर्थ्य का इस प्रकार वर्णन किया, तब यक्ष ने उनके सामने एक तिनका रख दिया और कहा कि भला आप इस तिनके को ही ले लीजिए और उड़ा दीजिए। इस पर वायुदेव ने अपनी सारी शक्ति लगाकर उस तिनके को उड़ाना चाहा, परन्तु उड़ा न सके। इसके बाद वायुदेवता ने भी अग्नि की भाँति अधिक जानने का प्रयत्न नहीं किया। वहीं से लौट आए और देवताओं के पास आकर कहा, 'वह यक्ष क्या है ?' यह हम नहीं जान सके ॥ १० ॥

The Yaksha on hearing the reply of the God, put a piece of straw before the Air God and asked him to take it up. The Air God approached the straw with all swiftness and force at his command, but he could not lift that piece of straw. There-upon, the Air God returned and told the Gods that he could not find out as to who that Yaksha was.

अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ ११ ॥

पदच्छेद—अथ, इन्द्रम्, अब्रुवन्, मघवन्, एतत्, विजानीहि, किम्, एतद् यक्षम्, इति, तथा, इति, तत्, अभ्यद्रवत्, तस्मात्, तिरोदधे ॥ ११ ॥

अन्वय—अथ (ते देवाः) इन्द्रम् अब्रुवन् (हे) मघवन् (त्वम्) एतत् यक्षम् किम् इति एतत् विजानीहि (तदा) इन्द्रः तथा (अस्तु) इति उक्त्वा तत् (यक्षम् प्रति) अभ्यद्रवत् (परन्तु यक्षम्) तस्मात् तिरोदधे ॥ ११ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अथ	इसके बाद	एतत्	यह
(ते देवाः)	(उन देवताओं ने)	यक्षम्	यक्ष
इन्द्रम्	इन्द्र से	किम्	कौन है
अब्रुवन्	कहा	इति	यह
हे मघवन्	हे इन्द्र बलवान	एतत्	यह
त्वं	तुम	विजानीहि	विशेष रूप से जानो

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(तदा)	(तब)	तत्	उस यक्ष के पास
इन्द्रः	इन्द्र	अभ्यद्रवत्	दौड़कर गए
तथा	वैसा	(परन्तु)	(परन्तु)
(अस्तु)	(होवे)	(यक्षम्)	(यक्ष)
इति	यह	तस्मात्	उस स्थान से
(उक्त्वा)	(कहकर)	तिरोदधे	अन्तर्ध्यान हो गया

भावार्थ —जब अग्निदेव और वायुदेव यक्ष का बिना पता लगाए लौट आए, तब सब देवताओं ने मिलकर इन्द्र से कहा कि आप हम सब में श्रेष्ठ और बलवान् हैं। आप ही जाकर यह पता लगाइए कि यह यक्ष कौन है। देवताओं की इस बात को सुनकर इन्द्र महाराज ने कहा, 'बहुत अच्छा, हम जाते हैं। यह कहकर इन्द्र उस यक्ष के पास गए, परन्तु यक्ष उनके सामने से अन्तर्धान हो गया ।। ११ ।।

व्याख्या— अग्निदेव और वायुदेव के यक्ष का बिना कुछ पता लगाए ही लौट आने पर सब देवताओं ने अपने राजा इन्द्र से कहा कि आप हम लोगों में श्रेष्ठ हैं। अब आप ही जाकर पता लगाइए कि यह यक्ष कौन है। इन्द्र महाराज गए तो, परन्तु उनके पहुँचते ही यक्ष अदृश्य हो गया।

इस आख्यायिका में यह बात स्पष्ट रूप से दिखायी गयी है कि और सब देवताओं से अग्निदेव बड़े हैं। वायु उनसे भी बड़े हैं और इन्द्र सबसे बड़े हैं। परन्तु यक्ष का पता इन्द्र भी न लगा सके। अब यह इन्द्र कौन हैं ? इस पर विचार किया जाता है। 'प्रश्नोपनिषद्' में ऐसा कहा गया है कि भार्गव वैदर्भि ऋषि ने पिप्पलाद मुनि के पास जाकर शिष्य रूप से यह प्रश्न किया कि इस मनुष्य शरीर को धारण करने वाले कौन-कौन से देवता हैं और सबसे श्रेष्ठ कौन हैं ? उत्तर में पिप्पलाद मुनि ने कहा कि आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाणी, मन, चक्षु और श्रोत्र इन नौ देवताओं ने स्पष्ट रूप से कहा कि हम लोग इस शरीर को धारण करते हैं। इस पर प्राण

देवता ने जो सबसे श्रेष्ठ है, कहा कि तुम मोह में क्यों फंसते हो। मैं ही अपने को पाँच भागों में विभक्त करके इस शरीर को धारण करता हूं या इन शरीरों की रक्षा करता हूँ। उन नवों देवताओं ने जब विश्वास नहीं किया, तब प्राण ने अभिमान के वशीभूत होकर उत्क्रमण करने अर्थात् निकलने का सा नाटक किया। तब वे सभी नवों देवता निकलने के लिए विवश हुए और प्राण से प्रार्थना करने लगे कि आप निकलिए नहीं और स्तुति करते हुए कहा कि यह जो सूर्य है, जो पर्जन्य है, मेघ है, जो मघवा है, इन्द्र है, वायु पृथिवी सत् असत्, अमृत ये सब आप ही हैं। (प्रश्नोपनिषद्, द्वितीय प्रश्न, म० १ से ५ तक)

इसी प्रकार प्राणों की श्रेष्ठता छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में प्रकारान्तर से दिखलाई गई है। अस्तु यह प्राण जो है, वही इन्द्र रूप से यहाँ दिखलाया गया है। ऐसा समझ पड़ता है तथा प्राण को और भी कई स्थानों पर इन्द्र से तुलना की गयी है।

प्राण एक तो पंच प्राण रूप से माने गये हैं। १–प्राण, २–अपान, ३–व्यान, ४–समान, ५–उदान; परन्तु इस सब प्राणों के अतिरिक्त एक मुख्य प्राण भी माना जाता है। श्री स्वामी शंकराचार्य जी ने वेदान्तदर्शन की टीका करते हुए दिखलाया है कि प्राण शब्द मुख्य प्राण के अर्थ में आता है, साधारण प्राण के अर्थ में नहीं आता। यह प्राण आत्मा से पैदा होता है जैसा कि प्रश्नोपनिषद् (तृतीय प्रश्न म० ९. १) में कौशेय आश्वलायन ऋषि ने पिप्पलाद मुनि से शिष्य भाव से यह पूछा कि यह प्राण जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है वह कहाँ से पैदा होता है और इस शरीर में कैसे आता है? इस प्रश्न के उत्तर में पिप्पलाद ऋषि यह कहते हैं कि यह प्राण आत्मा से पैदा होता है और मन के कारण इस शरीर में आता है।

पुराणों में इन्द्र देवताओं के राजा माने गये हैं और संस्कृत कोश के हिसाब से ऐश्वर्यवाला इन्द्र है, ऐसा कहा गया है। परन्तु असुरों से पराभूत होकर उन्होंने विष्णु भगवान् से सहायता माँगी है और सहायता प्राप्त की है।

है। अस्तु ऐसा समझ पड़ता है, कि जितनी भी शक्ति है, जिसका कि कुछ अनुमान किया जा सकता है, जहाँ तक मन की गति है, वहीं तक इन्द्र की यानी प्राण की शक्ति है।

The Gods then asked the powerful Indra to find out definitely as to who that Yaksha was and the Indra said that he would do so. Thereupon Indra ran to the Yaksha but the Yaksha disappeared from his sight.

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥ १२ ॥

पदच्छेद—सः, तस्मिन्, एव, आकाशे, स्त्रियम्, आजगाम, बहु, शोभमानाम्, उमाम्, हैमवतीम्, ताम्, ह, उवाच, किम्, एतत्, यक्षम्, इति ॥ १२ ॥

अन्वय—सः तस्मिन् एव आकाशे (एकाम्) बहु शोभमानाम्, स्त्रियम् आजगाम, ताम्, उमाम् हैमवतीम् ह उवाच एतत् यक्षम् किम् (आसीत्) इति ॥ १२ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
सः	वह	उमाम्	उमा से
तस्मिन्	उस	हैमवतीम्	हिमवान् की लड़की अथवा सुवर्णमयी से
एव	ही	ह	निश्चय ही
आकाशे	आकाश में	उवाच	कहा
एकाम्	एक श्रेष्ठ	एतत्	यह
बहुशोभमानाम्	अत्यंत शोभायमान	यक्षम्	यक्ष
स्त्रियम्	स्त्री के पास	किम्	क्या
आजगाम	पहुँच गया और	आसीत्	था
ताम्	उस	इति	यह

भावार्थ—जब इन्द्र के पहुंचने पर यक्ष अन्तर्ध्यान हो गये, तब इन्द्र देव

बड़े आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगे तो देखा कि वहाँ आकाश में एक स्त्री है जो बड़ी शोभावाली है तथा विनय के साथ वे उसके पास गए तो देखा कि यह तो उमा हैं जो हिमवान् की पुत्री है, अथवा जिसका शरीर सुवर्ण के आभूषणों से सुवर्णमय हो रहा है, वही है। इन्द्रदेव ने उससे पूछा कि हे माता ! अभी-अभी यहाँ पर जो यक्ष था और हमारे आने के बाद अन्तर्धान हो गया, आप हमको कृपा करके बता दीजिए कि वह कौन था, हम बड़ी श्रद्धा से आप से यह पूछना चाहते हैं।

व्याख्या—इस मन्त्र में उमा देवी का नाम प्रत्यक्ष रूप से आया है। इनका और महादेव जी का एकत्व भाव माना गया है। महादेव जी को अर्धनारीश्वर कहा गया है अर्थात् ऐसा माना गया है कि उनका शरीर आधा पुरुष का है और आधा स्त्री का। महादेव जी सभी विद्याओं के मूल माने गए हैं और उमा उनकी अनन्य सहचरी अर्थात् सदा साथ रहनेवाली मानी गयी हैं। यदि महादेव जी ब्रह्म हैं, तो उमा ब्रह्मविद्या हैं। जीव का धर्म अभिमान है। जब तक जीवत्व है, तब तक अभिमान है। ब्रह्मविद्या के द्वारा जीव का जीवत्व दूर हो जाता है और ब्रह्मभाव प्राप्त हो जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि इन्द्र ने इसी ब्रह्मविद्या के द्वारा परब्रह्म परमात्मा को पहिचाना और उन्होंने ही अपने सब देवताओं को ब्रह्म का ज्ञान कराया। यह बात और उपनिषदों में पाई जाती है। अतः यह समझ पड़ता है कि यह उमा ब्रह्मविद्या ही है। इन्द्र को अपरा विद्या का ज्ञान था। परन्तु इस परा विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या का ज्ञान इन्द्र को उमा के द्वारा ही प्राप्त हुआ।

In that very space Indra came across a woman, the most charming, the goldon Uma or the daughter of the Himavan. Indra anxiously asked her as to who that Yaksha was.

चतुर्थ खण्ड

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ १ ॥

पदच्छेद—सा, ब्रह्म, इति, ह, उवाच, ब्रह्मणः, वा, एतत्, विजये, महीयध्वम्, इति, ततः, ह, एव; विदाञ्चकार, ब्रह्म इति ॥ १ ॥

अन्वय—सा ह एतत् उवाच (यक्षम्) ब्रह्म एव इति ब्रह्मणः विजये वा (यूयं सर्वे देवाः) महीयध्वम् इति ह ततः एव (इन्द्रः) तत् (यक्षम्) ब्रह्म (एव) (आसीत्) इति विदाञ्चकार ॥ १ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
सा (उमा)	उस (उमा ने)	इति	यह
ह	ऐसा	ह	ऐसा
उवाच	कहा		
एतत् (यक्षम्)	यह (यक्ष)	ततः	तब
ब्रह्म	ब्रह्म	एव	ही
(एव अस्ति)	(ही है)	(इन्द्रः)	(इन्द्र ने)
इति	यह	(तत् यक्षम्)	(वह यक्ष)
ब्रह्मणः	ब्रह्म की	ब्रह्म	ब्रह्म
विजये	विजय में	(एव)	(ही)
वा	निश्चय करके		
(यूयम्)	(तुम लोग)	(आसीत्)	(था)
महीयध्वम्	महिमा को प्राप्त हुए हो	इति	यह
		विदाञ्चकार	जाना

भावार्थ—इन्द्र के इस प्रकार विनय के साथ पूछने पर उमा देवी ने कहा

कि यह देवासुर-संग्राम में जो विजय हुई है वह निश्चय करके ब्रह्म की ही हुई है यानी इस विजय के कारण ब्रह्म ही हैं और आप देवताओं को जो यह गौरव प्राप्त हुआ है, यह भी उन्हीं के कारण है। ऐसा कहा जाता है कि इन्द्र देवता ने इस बात को तभी जाना कि ब्रह्म ही यह यक्ष थे।

व्याख्या—अब यह चतुर्थ खण्ड प्रारम्भ होता है। यह इस उपनिषद् का अन्तिम खण्ड है। इसमें उपनिषद् का रहस्य एव सिद्धान्त आख्यायिका यानी कथा के रूप में लिखा गया है। उमा देवी ने इन्द्र से कहा कि यह यक्ष जिसको तुमने देखा तो अवश्य; परन्तु उसके पास जाते ही वह अदृश्य हो गया, वही परब्रह्म परमात्मा है। तुम्हारी जो कुछ विजय हुई तथा जो तुम्हारी महिमा हुई है, उसका कारण यही परब्रह्म परमात्मा हैं। इस प्रकार इन्द्र ने उमा देवी के कहने से ही यह जाना कि वह यक्ष जो प्रकट हुआ था, और जो अदृश्य हो गया, वह परब्रह्म परमात्मा ही था। इन्द्रियाँ एक मत से ७ मानी गयी हैं। दो आँख, दो कान, दो नाक के छिद्र और एक मुख—इन सातों इन्द्रियों को प्राण भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त दो और इन्द्रियाँ हैं लिंग और गुदा। ये सब मिलकर के ९, होते हैं। जैसा कि गीता में कहा गया है 'नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन् न कारयन्' (अ० ५ श्लोक १३) अर्थात् यह देही, जीव आत्मा, विज्ञान आत्मा इत्यादि इस नौ द्वार वाले शरीर में रहता हुआ भी न कुछ करता है और न कुछ करवाता ही है। कठोपनिषद (के द्वितीय अध्याय, द्वितीय वल्ली मन्त्र १) में कहा गया है, 'पुरमेकादशद्वारम-जस्यावक्रचेतस:'। अर्थात् यह शरीर एकादश यानी ११ द्वार वाला है, जिसका स्वामी अज है ओर जो पूर्ण रूप से शुद्ध है; इस प्रकार शरीर में ११ इन्द्रियाँ हैं। कुछ लोगों का मत है कि ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ मन, चित्त और बुद्धि—ये १३ इन्द्रियाँ हैं। इन सभी इन्द्रियों के देवता हैं। इन देवताओं की सख्या ३३ मानी गयी है। ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति, और विश्वदेव। गीता में कहा है—'वसूनां पावकश्चास्मि' (अ० १०, श्लोक २३) अर्थात् वसुओं में मैं पवित्र करने वाला अग्नि हूँ। अग्नि पृथिवी का देवता

है। इन सभी देवताओं में अग्नि श्रेष्ठ है, सर्वव्यापक है। रुद्र अन्तरिक्ष के देवता हैं। यह वायु, जैसे वसुओं में अग्नि हैं वैसे रुद्रों में वायु है। आदित्य, यह स्वर्ग के देवता हैं। सूर्य के १२ महीने ही १२ आदित्य हैं। इनमे इन्द्र भी हैं, और इन्द्र आदित्यस्वरूप ही हैं। ये ३१ देवता इस उपनिषद् में वे माने गए हैं, जिनको कि एस बात का अभिमान हुआ कि हमारी विजय हुई, हमारी महिमा है। इन्द्र प्राणरूप माने गए हैं। मन-बुद्धिसहित सभी इन्द्रियाँ सो जाती हैं, परन्तु प्राण जागता रहता है। यही प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार को जब वे जागते रहते हैं, तब ब्रह्मविद्या का ज्ञान कराता है। अस्तु इस आख्यायिका में यह दिखलाया गया है कि अग्नि और वायु में मन की प्रेरणा प्राणों के द्वारा होती है और वह प्राण मन के द्वारा इस शरीर में आता है। जैसा कि 'मनोकृतेनायत्यस्मिन् शरीरे' (प्रश्नोपनिषद् तृतीय प्रश्न मं० ३) अर्थात् यह प्राण मन की ही प्रेरणा से इस शरीर में आता है। जब मन और बुद्धि जागती हुई अवस्था में प्राण को प्रेरित करते हैं, तब जीव ब्रह्मविद्या के द्वारा आत्मरूप परब्रह्म परमात्मा परमपुरुष को जानता है, प्राप्त करता है और कृतार्थ हो जाता है।

The same Uma said that it was indeed Brahma It was due to the victory of the Brahma that you Gods became so glorious. It was only then that Indra realised that it was Brahma.

The same Uma said that the Yaksha, whom you saw, but who disappeared when you approached, was Brahma himself. The victory in 'Asura Sura Sangram' was due to Brahma and due to his victory, you Gods, became so glorious. So it was from Uma that Indra came to know that the Yaksha who disappeared was Brahma himself.

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान्यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २ ॥

तब से देवता अन्य से बढ़कर हैं। अन्य देवताओं से बढ़कर क्योंकि तीनों ने सबसे पहले इसका स्पर्श किया और ...

पदच्छेद—तस्मात्, वा, एते, देवाः, अतितराम्, इव, अन्यान्, देवान्, यत्, अग्निः, वायुः, इन्द्रः, ते, हि, एनत्, नेदिष्ठम्, पस्पृशुः, ते, हि, एनत्, प्रथमः, विदाञ्चकार, ब्रह्म, इति ॥ २ ॥

अन्वय—तस्मात् (हि) (कारणात्) अग्निः वायुः इन्द्रः ते एते देवाः अन्यान् देवान् अतितराम् यत् (अग्निः) (वायुः) (इन्द्रः) (ते) (देवाः) हि एनत् (यक्षम्) नेदिष्ठम् पस्पृशुः (अपि च) ते हि एनत् (यक्षम्) ब्रह्म इति प्रथमः विदाञ्चकार ॥ २ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
तस्मात् वा	अथवा उस	हि	निश्चय करके
(कारणात्)	(कारण से ही)	एनत्	इस
अग्निः	अग्नि	(यक्षम्)	(यक्ष को)
वायुः	वायु	नेदिष्ठम्	समीप से (बहुत
इन्द्रः	इन्द्र		पास से)
एते	ये	पस्पृशुः	स्पर्श किया
देवाः	देवता	(अपि च)	(और यह भी कि)
अन्यान्	और	ते	उन्होंने
देवान्	देवताओं से	हि	निश्चय करके
अतितराम्	बहुत उत्कृष्ट हैं	एनत् (यक्षम्)	इस (यक्ष को)
	(बहुत बड़े हैं)	ब्रह्म	ब्रह्म ही है
यत्	इसलिए कि	इति	यह
ते	उन	प्रथमः	पहले पहल
(देवाः)	(देवताओं ने)	विदाञ्चकार	जाना

भावार्थ—निश्चय करके यही कारण है कि अग्नि, वायु और इन्द्र ये तीनों देवता और सब देवताओं से श्रेष्ठ माने गये हैं क्योंकि उन्होंने उस यक्ष के पास जाकर उसको पास से देखा और पहले पहल जाना कि यह यक्ष ही ब्रह्म है ॥ २ ॥

Therefore most certainly the Fire, Air and Indra gods as if far excel other gods because they contacted the Yaksha most proximately and they were first to know the Yaksha as Brahma.

Definitely, this is the reason that Fire, Air and Indra Gods are supposed to be superior to other Gods, because they went to the Yaksha and saw him from a close distance and realised for the first time that this Yaksha was Brahma.

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्ठम् पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ ३ ॥

पदच्छेद—तस्मात्, वा, इन्द्रः, अतितराम्, इव, अन्यान्, देवान्, सः, हि, एनत्, नेदिष्ठम्, पस्पर्श, सः, हि, एतत्, प्रथमः, विदाञ्चकार, ब्रह्म, इति ॥ ३ ॥

अन्वय—तस्मात् (एव) (कारणात्) वा इन्द्रः अन्यान् देवान् अतितराम् इव (यतः) स (इन्द्रः) एनत् यक्षम्) प्रथमः हि (ब्रह्म) इति विदाञ्चकार ॥ ३ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
तस्मात् वा	उस कारण से ही	इन्द्र)	(इन्द्र ने)
इन्द्रः	इन्द्र	एनत् (यक्षम्)	इस (यक्ष को)
अन्यान्	और दूसरे	हि	निश्चय करके
देवान्	देवताओं से	नेदिष्ठम्	बहुत पास से
अतितराम्	अत्यन्त बढ़ गए	पस्पर्श	स्पर्श किया
इव	ऐसा माना जाता है	(पुनः)	(फिर)
(यतः)	(क्योंकि)	(च)	(और)
सः	उस	सः	उसने

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
एनत्	इस	(ब्रह्म)	(परब्रह्म परमात्मा)
(यक्षम्)	(यक्षको)	इति	इस प्रकार
प्रथमः	पहले पहल	विदाञ्चकार	जाना
हि	निश्चय करके		

भावार्थ—उसी कारण से निश्चय रूप से मानो ऐसा कहा जाता है कि इन्द्र अन्य सब देवताओं से बहुत बड़े हो गये; क्योंकि उन्होंने बहुत समीप से उसका स्पर्श किया और पहले पहल यह जाना कि यह यक्ष जो थे वह परब्रह्म परमात्मा ही थे ।। ३ ।।

व्याख्या—(मन्त्र २ व ३) इन दोनों मंत्रों में पहले तो यह बात कही गयी है कि अग्नि, वायु और इन्द्र अन्य सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं; क्योंकि इनको पहले पहल यह ज्ञात हुआ और प्रत्यक्ष दर्शन भी हुए कि यह यक्ष ही परब्रह्म परमात्मा हैं। दूसरे मन्त्र में यह बात कहकर तीसरे मन्त्र में भी यह बात कही गयी है कि उमा देवी के बतलाने पर सर्वप्रथम इन्द्र को ज्ञान हुआ कि जिसका साक्षात्कार उन्होंने दूर से किया था, वह यक्ष परब्रह्म परमात्मा ही थे, उन्हीं के कारण देवताओं की विजय और उन्हीं के कारण देवताओं की महिमा हुई।

पुराणों में ऐसा कहा गया है कि दिति (दैत्यों की माता) को, अपने पुत्रों के मारे जाने पर बड़ा दुःख हुआ। कश्यप जी ने अपनी स्त्री दिति की सेवा से प्रसन्न होकर दिति को वरदान दिया कि दिति को एक ऐसा पुत्र हो जो इन्द्र को मारने वाला हो। कश्यप जी ने दुःख के साथ वचनबद्ध हो जाने के कारण 'एवमस्तु' ऐसा ही हो, कह कर कुछ नियमपालन का विधान किया। नियमों का पालन करने के कारण प्रायः अन्तिम समय में इन्द्र ने अपनी सौतेली माँ दिति के नियमपालन के समय सेवा की और नियमपालन में कुछ त्रुटि देखकर माता के गर्भ में प्रवेश कर उस गर्भ के सात टुकड़े कर दिये। गर्भ के रुदन करने पर इन्द्र ने 'मा रुत मा रुत' अर्थात् रोओ नहीं, रोओ

नहीं, ऐसा कहते हुए उस गर्भ के फिर सात टुकड़े कर दिये। दिति के जाग पड़ने पर इन्द्र ने हाथ जोड़े और कहा, 'माता जी ! आपके नियम में त्रुटि हो गयी थी इसलिए मैंने समय पाकर गर्भ के ४९ टुकड़े कर दिये, परन्तु ये अब दैत्य होते हुए भी हमारे सखा हो जायेंगे।' दिति ने प्रसन्न होकर कहा, 'बहुत ठीक है।'

४९ देवता इन्द्र के सखा हो गये और यही मरुत अर्थात् वायु देवता कहलाते हैं। इनका इन्द्र से परम सान्निध्य है। अतः ये इन्द्र से छोटे और इन्द्र इनसे श्रेष्ठ हैं।

अग्नि और इन्द्र के बीच में वायु, देवता हैं। वायु अग्नि और इन्द्र दोनों के सखा हैं। 'मदन अनल सखा सही' अर्थात् वायु जो है यह कामदेव रूपी अग्नि का सच्चा सखा है। अस्तु पृथिवी के सब देवताओं में अग्नि श्रेष्ठ हैं और अन्तरिक्ष में रहने वाले ४९ मरुत जो वायु के नाम से प्रसिद्ध हैं, वे अग्नि से श्रेष्ठ हैं और इन्द्र जो स्वर्ग में रहते हैं वे स्वर्ग के देवताओं में श्रेष्ठ हैं। इन्द्र १२ आदित्यों में एक हैं और ये श्रावण मास के स्वामी हैं और 'आदित्यो ह वै प्राणः' (प्रश्नोपनिषद्, प्रश्न १, मन्त्र ५) अर्थात् आदित्य निश्चय करके प्राण हैं। इस प्रकार इन्द्र का श्रेष्ठत्व स्पष्ट है।

On account of the same reason, Indra God far excels the other Gods as he contacted the Yaksha most proximately and he was first to know that Yaksha as Brahma.

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा३ इतीन्न्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम् ।। ४ ।।

पदच्छेद—तस्य, एष, आदेशः, यत्, एतत्, विद्युतः, व्यद्युतत्, आ ३, इति, इत्, न्यमीमिषत्, आ ३, इति, अधिदैवतम् ।। ४ ।।

अन्वय—यत् एतत् विद्युतः व्यद्युतत् आ ३ एषः तस्य (ब्रह्मणः) आदेशः इति इत् न्यमीमिषत् आ ३ इति (एतत्) अधिदैवतम् ।।

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यत्	जो	आदेश:	संकेत इशारा
एतत्	यह	इति	है
विद्युत:	बिजली का	इव्	तथा
व्यद्युतत्	चमक जाना	न्यमीमिषत्	पलक का भाँजना
आ ३	जैसा है	आ ३	जैसा है
एष:	यह	इति	यह
तस्य	उस	अधिदैवतम्	(उसकी) देवता
(ब्रह्मण:)	(ब्रह्म का)		विषयक उपमा है

भावार्थ—इस मन्त्र में ऋषि उस परब्रह्म परमात्मा के अधिदैवत पक्ष का निर्देश करते हुए कहते हैं कि यदि हम उन परब्रह्म परमात्मा को बाहरी इन्द्रियों से संकेत करना चाहें तो ऐसा समझना चाहिए कि जैसे बिजली चमकती है और तत्क्षण अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् बाहरी जगत् अन्तरतम देश में क्षण भर के लिए जान पड़ता है और फिर बदल सा जाता है। इसी प्रकार दूसरी उपमा से भगवान् का निर्देश इस प्रकार किया जाता है कि जैसे आँखें पलक भाँजती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म का साक्षात् होता है और फिर अदृश्य हो जाता है ॥ ४ ॥

व्याख्या—मन्त्र ४-५-६ की व्याख्या एक साथ की जा रही है। खण्ड १ के ४ से लेकर ८ मन्त्रों तक 'नेदं यदिदमुपासते' यह चौथा पाद प्रत्येक मन्त्र का समान रूप से है। इस पाद का अर्थ यह है कि जिसकी साधारण लोग वाणी इत्यादि के द्वारा उपासना करते हैं, वह यह ब्रह्म नहीं है। इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वाणी, मन, नेत्र, कर्ण और प्राण के द्वारा जिसकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्म नहीं है। वह तो कुछ और ही है। प्रश्न होता है कि तो क्या उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना किसी प्रकार से हो नहीं सकती ? ऐसा समझ पड़ता है कि इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर यह उपनिषद् या ऋषि इन तीनों मन्त्रों के द्वारा देते हुए प्रतीत होते हैं। छठे

मन्त्र में 'उपासितव्यम्' अर्थात् उपासना करनी चाहिए, यह शब्द स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। अतः ऐसा समझ पड़ता है कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना हो सकती है और करना भी आत्म-कल्याण के लिये आवश्यक है।

उपासना सगुण और निर्गुण दो प्रकार की होती है। वैदिक धर्म में निर्गुण उपासना बड़ी कठिन मानी गयी है। श्रीकृष्ण जी ने गीता में कहा है 'ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते। सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।' (अ० १२ श्लोक ३) अर्थात् जो अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वत्रग, अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल और ध्रुव की उपासना करते हैं इत्यादि। फिर इसी अध्याय के पाँचवें श्लोक में कहते हैं 'क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते' अर्थात् जिनका चित्त अव्यक्त में आसक्त है, उनको अधिक क्लेश सहना होता है; क्योंकि जिनको शरीर का अध्यास है, उनको अव्यक्त गति बड़े दुःख से प्राप्त होती है। अस्तु उपनिषदों से भी, पुराणों तथा शास्त्रों से भी और वेदों से भी सगुणोपासना आवश्यक समझी गयी है। संसार में भी देखने से प्रतीत होता है कि यदि हम किसी जीवित मनुष्य की प्रशंसा या उपासना करना चाहते हैं तो उसके रूप, नाम, और उसके गुणों का ही वर्णन करते हैं। यद्यपि वह सब शरीर से सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु चूंकि शरीर से मुख्यतया उसी जीव अर्थात् आत्मा का ग्रहण होता है। वैसे ही मूर्ति द्वारा भगवान् की उपासना परमावश्यक है।

चौथे मन्त्र में रूप और नाम का ग्रहण होना यानी प्राप्त होना समझ पड़ता है। उसमें बिजली का चमकना और पलक का मारना इन दोनों बातों से आँख का गुण प्रकट होता है। आँख से रूप ही देखा जाता है, परन्तु जैसा रामायण में कहा गया है 'रूप विशेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परहि पहिचाने।' अर्थात् रूप तो प्रत्यक्ष देख पड़ता है, परन्तु नाम के बिना जाने पहिचान नहीं हो सकती। इससे ऐसा समझ पड़ता है कि रूप और नाम का निर्देश यानी इशारा इस मन्त्र के द्वारा होता है। परन्तु ध्यान करने के समय

आँखें मुंद जाती है और जप करते-करते मन भी लीन सा हो जाता है और थोड़ी-थोड़ी देर में बाहर आता हुआ सा जान पड़ता है। इसी बात को इन दोनों मंत्रों—४ और ५ में समझाया है। मंत्र ४ में अधिदैवत उपासना है और मन्त्र ५ में अध्यात्म उपासना है। पाँचों ज्ञानेद्रियाँ जिन-जिन विषयों का ज्ञान करती हैं वह सब बाहरी देवताओं से सम्बद्ध हैं और मन जब बाहरी इन्द्रियों को वशीभूत करके अन्तर्दृष्टि होता है और बुद्धि में प्रवेश करता है, यह अध्यात्म ज्ञान है।

चौथे मन्त्र में आँख को सभी इन्द्रियों का उपलक्षण अर्थात् सबसे श्रेष्ठ माना गया है। रूप और नाम की उपासना बिना आँख के नहीं हो सकती। तब भगवान् को किस प्रकार सोचा जाय? इसी बात को इस मन्त्र में दिखलाया गया है। जैसे वर्षा के दिनों में घनघोर घटा छाई हुई है, बिजली बार-बार चमकती है, तो देख पड़ता है कि बिजली एक ओर चमकी और अदृश्य हो गयी और फिर दूसरी ओर फिर तीसरी ओर। इसी प्रकार अनेकों बार चमकती हैं और अदृश्य होती है और जैसे आँखों की पलक भाँजने में रूप नये-नये प्रकार से बार-बार दिखाई देता है और अदृश्य हो जाता है, वैसे ही सब मूर्तियों में भगवान् के अनन्त रूप और अनन्त नाम हैं। जैसे मूर्तियों के दर्शन करने के बाद मन में अनेकों प्रकार की भावनायें पैदा होती हैं और विलीन होती जाती हैं वैसे ही मन में जो भावनायें पैदा होती हैं, उन सभी में जो एकत्व की भावना है, उसके द्वारा संकल्प मन में होते हैं। वह परब्रह्म परमात्मा अध्यात्म दृष्टि से देखा जाता है, वही अधिदैवत और अध्यात्म उपासना है। छठे मन्त्र में 'नाम' शब्द प्रत्यक्ष रूप से आया है। यह कहा गया है कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना 'वन' इस नाम से करनी चाहिए और फिर कहा है कि जो कोई इस बात को इसी प्रकार ठीक-ठीक समझता है, उसकी सभी वांछा अर्थात् इच्छा करते हैं अर्थात् आशा करते हैं कि यह हमारी सभी इच्छाओं को पूर्ण करेगा।

उपासना करने के समय रूप हो और नाम हो और नाम के साथ नाम का

अर्थ भी हो । उसी अर्थ का चिन्तन मन एकाग्रता से जप करता हुआ ध्यान करता है तब भगवान् का ध्यान किस भावना से करे । इसका उत्तर यह जान पड़ता है कि मन इस प्रकार की भावना करे कि जितनी भी इच्छायें, अभिलाषायें, अपने तथा संसार के कल्याण के लिए होती हैं, उन सबका आदि उसी परब्रह्म परमात्मा से हैं और वही उन सबको पूरा भी करेगा । मन में यह दृढ़ श्रद्धा और विश्वास हो ।

In the outside world beckoning or realisation of Brahma may be compared to the flashes of lightning and twinkling of eyes.

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः ॥ ५ ॥

पदच्छेद—अथ, अध्यात्मम्, यत्, एतत्, गच्छति, इव च, मनः, अनेन, च, एतत्, उपस्मरति, अभीक्ष्णम्, संकल्पः ॥ ५ ॥

अन्वय—अथ (ऋषिः) (पुनः) अध्यात्मम् (पक्षम्) (दर्शयति) यत् एतत् मनः (एतत्) (ब्रह्म) (प्रति) गच्छति इव संकल्पः अनेन (मनसा) च, एतत् (ब्रह्म) अभीक्ष्णम् उपस्मरति ॥ ५ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अथ	उसके बाद	अनेन	इस
(ऋषिः पुनः)	(ऋषि फिर)	(मनसा)	(मन के द्वारा)
अध्यात्मम्	अध्यात्मविषयक (उपदेश को)	च	और
		एतत्	इस
(दर्शयति)	(दिखलाते हैं)	(ब्रह्म)	(ब्रह्म को)
यत् एतत्	यह जो	अभीक्ष्णम्	बार-बार
मनः	मन	संकल्पः	संकल्प
गच्छति इव	जाता हुआ सा है	उपस्मरति	स्मरण करता है

भावार्थ—अधिदैवत पक्ष को दिखलाने के बाद ऋषि कहते हैं कि परब्रह्म परमात्मा को अध्यात्म रूप से अर्थात् बाहरी इन्द्रियों से काम न लेकर अन्तःकरण से समझना चाहे तो ऐसे समझना चाहिए कि जैसे मन परब्रह्म परमात्मा तक बार-बार जाता है और फिर लौट आता है। इस प्रकार से समझें और एक दूसरे प्रकार से इसको ऐसे समझना चाहिये कि जैसे मनुष्य बार-बार मन के द्वारा इस परब्रह्म परमात्मा का स्मरण करता है तथा ये जो संकल्प विकल्प मन में बार-बार पैदा होते हैं, वे बार-बार मन को परब्रह्म परमात्मा के स्मरण करने को बाध्य करते हैं ॥ ५ ॥

And so far as individual self is concerned, the beckoning or realisation of Brahma may be compared to the mind trying to approach Brhama and the individual self concentrating the mind on Brahma again and again and again.

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ ६ ॥

पदच्छेद—तत्, ह, तत्, वनम्, नाम, तत्, वनम्, उपासितव्यम्, सः, यः, एतत्, एवम्, वेद, अभि, ह, एनम्, सर्वाणि, भूतानि, संवाञ्छन्ति ॥ ६ ॥

अन्वय—तत् (ब्रह्म) ह वनम् नाम तत् (ब्रह्म) तत् वनम् इति उपासितव्यम् सः यः एतत् (ब्रह्म) एवम् वेद सर्वाणि भूतानि ह एनम् अभिसंवाञ्छन्ति ॥ ६ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
तत् (ब्रह्म)	वह (परब्रह्म परमात्मा)	नाम	प्रसिद्ध है
		तत् (ब्रह्म)	वह (परब्रह्म परमात्मा)
ह	निश्चय ही		
वनम्	भजन करने योग्य आनन्दस्वरूप	तत् वनम्	वह भजन के योग्य, वह आनन्दस्वरूप,

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
	वह अवस्था जहाँ कि शान्ति अवश्यमेव मिल जाय	वेद	जान गया
		सर्वाणि	सब
		भूतानि	प्राणी
इति	यह	ह	निश्चय ही
उपासितव्यम्	उपासना करनी चाहिए	एनम्	इसको
सः	वह मनुष्य	अभि· संवाञ्छन्ति	सब प्रकार से प्रेम करते हैं या आशा करते हैं कि सब प्रकार से यह हमारी इच्छाओं को पूरा करेगा
यः	जो		
एतत् (ब्रह्म)	इस (परब्रह्म परमात्मा को)		
एवं	इस प्रकार		

भावार्थ—ऋषि ने खण्ड एक के ४ से ८ मन्त्रों तक यह बतलाया है कि साधारण सांसारिक लोग जिस ब्रह्म की उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है जो मन का भी मन, प्राण का भी प्राण इत्यादि है। इससे लोग यह न समझें कि उस परब्रह्म परमात्मा की उपासना ही नहीं हो सकती। अतः ऋषि इस मन्त्र में उपासना का क्या रूप होना चाहिए? यह दिखलाते हुए कहते हैं कि उस परब्रह्म परमात्मा को वन रूप से समझें अर्थात् वह भगवान् परब्रह्म परमात्मा ऐसे हैं कि जिनका सम्यक् रूप अर्थात् अच्छी तरह से भजन करना चाहिये। परमशान्ति देने वाले अर्थात् वननीय वही हैं। परमशान्ति उन्हीं से मिल सकती है। इस प्रकार जो मनुष्य परब्रह्म परमात्मा को जानता है, उसके प्रति समस्त संसार के प्राणी हिंसा भाव को छोड़ देते हैं, प्रेम करने लगते हैं, और आशा एव विश्वास करते है कि ये महात्मा हमारी सभी इच्छाओं की पूर्ति कर सकते हैं।

मन्त्र ६ में 'तद्वनम्' शब्द आया है। तद् वनम् इति उपासितव्यम्

'वह' 'वन' स्वरूप है इस प्रकार की उपासना करे। 'वन' अर्थात् वन्यते तद् वनम्' जों वननीय है, वही वन है। अर्थात् आनन्द स्वरूप है। आनन्द ही वननीय है 'भगवान् आनन्दस्वरूप हैं'—इस प्रकार भगवान् की उपासना करे।

वन का अर्थ जल भी है। जो गर्मी के ताप को शान्त करता है। हृदय को शान्ति देता है। गीता में श्रीकृष्ण जी ने कहा है—'रसोऽहमप्सु कौन्तेय' (अध्याय ७ श्लोक ८) अर्थात् जल में जो रस है, वह मैं हूं। और तैत्तिरीय उपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली सप्तम अनुवाक में ऐसा पद आया है। 'यद् वै तद् सुकृतं रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' अर्थात् निश्चय ही जो वह सुकृत है वही रस है। निश्चय करके यह जीवात्मा इसी रस को पाकर आनन्दित होता है। अतः ऐसा जान पड़ता है कि वन शब्द से उसी रसों के रस को आनन्दों के आनन्द को 'वन' अर्थात् प्राप्त होने योग्य वस्तु रूप से कहा गया है।

Most certainly Brahma is happines and glory personified and It should be worshipped as such. He also knows Brahma like this is loved by all creatures for he is expected to fulfil all their desires.

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ७ ॥

पदच्छेद—उपनिषदम्, भोः, ब्रूहि, इति, उक्ता, ते, उपनिषद्, ब्राह्मीम्, वाव, ते, उपनिषदम्, अब्रूम, इति ॥ ७ ॥

अन्वय—(एतत्)(सर्वं)(श्रुत्वा)(शिष्यः)(पुनः)(प्रार्थयते) भोः (गुरो) (मह्यम्) (अधुना) उपनिषदम् ब्रूहि (गुरुः) (कथयति) ते उपनिषद् उक्ता, इति (परम्) ब्राह्मीम् अब्रूम इति ॥ ७ ॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
(एतद् सर्वं)	(यह सब)	(कथयति)	(कहते हैं)
(श्रुत्वा)	(सुनकर)	ते	तुमको
(शिष्य:)	(शिष्य)	उपनिषद्	उपनिषद् का रहस्य
(पुन:)	(फिर)	उक्ता	बतलाया है
(प्रार्थयते)	(प्रार्थना करता है)	इति	यह
भो: (गुरो)	हे (गुरुजी)	(परम्)	(परन्तु)
(मह्यम्)	(मुझसे)	ब्राह्मीम्	ब्रह्म-सम्बन्धी
(अधुना)	(अब)	वाव	ही
उपनिषदम्	उपनिषद् को, अर्थात् इस उपनिषद् के रहस्य को	ते	तुमसे
		उपनिषद्	उपनिषद्
		अब्रूम	कहता हूँ
ब्रूहि	कहिये	इति	यह
(गुरु:)	(गुरु)		

भावार्थ—इस प्रकार उपदेश को सुन करके शिष्य गुरु से फिर पूछता है कि अब आप कृपा करके इस उपनिषद् के गूढ रहस्य को बतला दीजिए। यह सुनकर गुरु जी ने कहा कि यह जो अब तक हमने तुमसे उपनिषद् का ज्ञान कहा है, यही इसका गूढ़ रहस्य भी है। परन्तु अब हम तुमसे यह बतलाते हैं कि उस परब्रह्म परमात्मा का जिससे साक्षात् सम्बन्ध है, उस उपनिषद् का क्या रहस्य है ॥ ७ ॥

The disciple asks the teacher to reveal to him the knowledge about Brahma. The teacher says that he has already revealed knowledge about Brahma, but now he will say as to how to attain it.

तस्यै तपो दम: कर्मेति प्रतिष्ठा वेदा: सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ७ ॥

पदच्छेद—तस्यै, तपः, दमः, कर्म, इति, प्रतिष्ठा, वेदाः, सर्वाङ्गानि, सत्यम्, आयतनम् ।। ८ ।।

अन्वय—तस्यै (स्याः) (उपनिषदः) तपः, दमः, कर्म इति प्रतिष्ठा, (तथा) वेदाः, सर्वाङ्गानि सत्यम् आयतनम् ।। ८ ।।

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
तस्यै	उसके लिये	(तथा)	(और)
(तस्याः)	(उपनिषद् के)	वेदाः	(चारों) वेद
तपः	तपस्या, (गीता अ० १७, श्लोक १४ से १९ तक)	सर्वाङ्गानि	सब अंग (वेद के ६ अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद तथा ज्योतिष)
दमः	इन्द्रिय दमन		
कर्म	कर्म (गीता, अध्याय १६. श्लोक २८)	सत्यम्	सत्य
		आयतनम्	घर, आधार
इति	यह	(अस्ति)	(है)
प्रतिष्ठा	आश्रय, आधार		

भावार्थ—उसके अर्थात् उपनिषद् की प्राप्ति के लिए तपस्या, ५ ज्ञान इन्द्रियाँ, ५ कर्म इन्द्रियाँ और मन का दमन और कर्म इसकी प्रतिष्ठा है अर्थात् आधार है अर्थात् आश्रय है। चारों वेद, वेद के सब अंग और सत्य ये इसके आयतन अर्थात् घर या घेरा है।

व्याख्या—मन्त्र ७ व ८ की व्याख्या एक साथ की जाती है। मन्त्र ७ में शिष्य ने पूछा कि कृपा करके इस उपनिषद् का रहस्य बतलाइये। गुरु ने उत्तर दिया कि इस उपनिषद् के रहस्य को तो हम बता चुके। परन्तु अब हम ब्रह्म-सम्बन्धी उपनिषद् अर्थात् ब्रह्मविद्या को बतलावेंगे। इससे भाव यह समझ पड़ता है कि ऋषि ने सगुण उपासना का रूप इन ३ मन्त्रों में सूत्र रूप में बतलाया जिसका कि विशेषरूप से वर्णन और अध्ययन और भी अनेक उपनिषदों में, भागवत आदि पुराणों में एवं वेदों में भी आया है।

परन्तु यह सगुण उपासना अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह ब्रह्म विद्या प्राप्ति का एक साधन है। मन के द्वारा चिन्तन बहुत देर तक हो सकता है। समाधि लग जाने पर सहस्रों वर्षों तक इसकी अवधि हो सकती है। तब मन का आधार केवल ब्रह्मविद्या रह जाती है। वह ब्रह्मविद्या इस प्रकार सगुण उपासना करते-करते किस प्रकार से प्राप्त हो सकती है? इसका उत्तर आठवें मन्त्र में दिया गया है—ऐसा समझ पड़ता है। ऋषि कहते हैं कि उस ब्रह्मविद्या की प्रतिष्ठा के लिए तप, दम और कर्म आवश्यक हैं। परन्तु उसका आयतन अर्थात् घर वेद के सब अंग और सत्य हैं। इसका भाव कुछ ऐसा समझ पड़ता है कि उस ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के उपाय इस संसार में आकर के जीव के लिये यह है कि कर्म को करे और जो कुछ कष्ट सहना पड़े, सहे—यह तप है और इन कर्म और तपस्या के द्वारा इन्द्रियों को जीते अर्थात् इन्द्रियजित् हो जाय। मन के सहित सभी इन्द्रियों को अपने वश में कर ले। कर्म इन सबका आधार है। वह कर्म क्या है? इसका ज्ञान कैसे हो? इसके उत्तर में ऋषि कहते हैं कि वेद के द्वारा इनका ज्ञान प्राप्त करें; परन्तु वेद को समझने के लिए वेद के सभी अंगों का जानना आवश्यक है। बिना उसके जाने वेद का अर्थ ठीक-ठीक नहीं लग सकता। बिना लगाम के घोड़े की तरह वेद का अर्थ बिना उन सब अंगों को जाने, मनमाना कर देने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है और अनधिकारियों के लिये वह आक्षेप रूप हो जाता है और थोड़े ज्ञानवालों के लिये मति-भ्रम का यथेष्ट अर्थात् काफी साधन हो जाता है। वेद के अंग कितने हैं? इसका वर्णन मुण्डकोपनिषद् में मुख्यरूप 'से शिक्षा कल्पो व्याकरणम् निरुक्तम् छन्दो ज्योतिषमिति' अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये ६ वेद के अंग बताये गये हैं। परन्तु वेद कहीं ३ माने गये हैं तथा कहीं ४। यजुर्वेद के दो अंग माने गये-शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। वेद के भी तीन विशेष अंग माने गए हैं। १—मन्त्र भाग, २—उपनिषद्, ३—ब्राह्मण भाग। इन सबको बिना जाने कर्म का क्या स्वरूप है? समझना कठिन है। इस मन्त्र

में सत्य शब्द जो आया है उससे तात्पर्य और भी ग्रन्थों का होना जान पड़ता है। मनुस्मृति, महाभारत, बाल्मीकि रामायण, पुराण आदि का समावेश इसी सत्य शब्द के अन्दर आया हुआ जान पड़ता है। गीता में भी श्रीकृष्ण जी ने सोलहवें अध्याय के २३ और २४ श्लोकों में कहा है—यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तम् कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ अर्थात् जो मनुष्य शास्त्र की विधि को छोड़कर मनमाने रूप से व्यवहार करता है, न तो उसको सुख, न सिद्धि और न परमगति प्राप्त होती है। इसलिये शास्त्र तुम्हारे लिये प्रमाण हैं। क्या करना चाहिये? क्या न करना चाहिये? इस प्रकार के प्रश्न होने पर शास्त्र ही प्रमाण है और शास्त्र के विधान को जानकर के कर्म को करना चाहिये।

Penance, control of senses and actions, are neccessary for acquiring the divine knowledge of Brahmi Upanishad. It is only on account of them that the divine knowledge made stable. The four 'Vedas', the six Angas of the Vedas i. e. Siksha etc. and other standard religious literatures, such as Manusmriti etc. are the abode of the Divine knowledge.

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गेलोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ९ ॥

अन्वय—यः (पुरुषः) वा एताम् (उपनिषदम्) एवम् (प्रकारेण) (उक्तम्) यथावत् वेद (सः) पाप्मानम् अपहत्य अनन्ते ज्येये स्वर्गेलोके प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ९ ॥

भावार्थ—यह बात निश्चित है कि जो भी मनुष्य इस उपनिषद् को ऋषि अथवा गुरु से कही हुई को ठीक-ठीक वैसी ही समझता है, वह पाप को नष्ट करके अनन्त और सबसे श्रेष्ठ स्वर्ग लोक अर्थात् ब्रह्मानन्द में प्रतिष्ठित हो जाता है और फिर उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती॥ ९॥

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
यः	जो	(सः)	(वह)
(पुरुषः)	(पुरुष)	पाप्मानम्	पाप को
वा	निश्चय ही	अपहत्य	नष्ट करके
एताम्	इस	अनन्ते	अनन्त
(उपनिषदम्)	(उपनिषद् को)	ज्येये	ज्येष्ठ-श्रेष्ठ
एवम्	इस	स्वर्गलोके	स्वर्गलोक में
(प्रकारेण)	(प्रकार से)	प्रतितिष्ठति	प्रतिष्ठित होता है यानी स्थिर हो जाता है
(उक्ताम्)	(कही हुई को)		
(यथावत्)	(ठीक-ठीक)		
वेद	जानता है	प्रतितिष्ठति	प्रतिष्ठित होता है

व्याख्या—इस अन्तिम मन्त्र में यह कहा गया है कि जो कोई भी इस उपनिषद् को जैसा कि इसमें कहा गया है जान लेता है, वह सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है और सबसे श्रेष्ठ अनन्त स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है। इसमें विशेष रूप से विचारणीय यह बात है कि 'जो इस उपनिषद् को इस प्रकार से जानता है और पाप को नष्ट कर देता है—' इसका भावार्थ क्या है ? ज्ञान एक तो यथार्थ होता है, दूसरा अयथार्थ होता है और तीसरा विपरीत ज्ञान होता है। इन्हीं को गीता में सात्त्विक, राजसिक और तामसिक ज्ञान कहते हैं। ये बुद्धि के भाव हैं। जो बात जैसी है उसको उस प्रकार समझ लेना यथार्थ ज्ञान कहा जाता है और जो बात जैसी है उसको कुछ ठीक न समझना यह अयथार्थ ज्ञान है और जो बात जैसी नहीं है, उसको वैसी समझना यह विपरीत ज्ञान है। योगदर्शन में इन्हीं को प्रमाण; विपर्यय और विकल्प रूप से कहा गया है जैसे एक आदमी को देखा और स्मरण आ गया कि यह अमुक व्यक्ति है यह तो यथार्थ ज्ञान हुआ और यदि उसी मनुष्य को देखा और नाम याद न आया परन्तु इतना स्मरण है कि इसको हमने देखा है—यह अयथार्थ ज्ञान है और यदि किसी को देखकर समझ पड़ा

कि जानते हैं, देखा है, यह अमुक व्यक्ति है, परन्तु उसको कभी देखा नहीं, न जानते हैं, केवल समानता से अनुमान किया—यह विपरीत ज्ञान है। एक दूसरा उदाहरण इस प्रकार समझिये कि श्री गीता जी की जिस प्रकार अनेक टीकायें हुई हैं और उनमें बहुत बड़ा मतभेद भी है। परन्तु सब अपने को ठीक समझते हैं। उनमें से कुछ तो यथार्थ हैं और कुछ अयथार्थ तथा कुछ विपरीत हैं। यद्यपि उनको अपने हृदय में सच्चा विश्वास है। इसी प्रकार इस उपनिषद् को जो ठीक-ठीक समझता है वह कौन है? कौन हो सकता है? इसका थोड़ा सा निर्देश भी करते हैं। वह यह है कि वह पाप से मुक्त हो जाता है।

इस विषय में आत्म-प्रवंचना (self-deception) की भी संभावना है और अधिकतर होती भी है अर्थात् जिस मनुष्य के हृदय में यह विश्वास हो गया कि हममें पाप नहीं है सचमुच पाप का अस्तित्व तीनों कालों में एवं किसी देश में भी न था, न है, न होगा और कोई भी उससे लिप्त नहीं हो सकता। पाप का विचार केवल भ्रममात्र है। इस बात में उसको दृढ़ निष्ठा हो जाती है और दृढ़ विश्वास भी हो जाता है। वह अपने से भिन्न कुछ नहीं देखता। सब स्वयं आत्मस्वरूप हो जाता है और सम्पूर्ण संसार को आत्म-स्वरूप ही देखता है और उसका यह भाव कभी विचलित नहीं होता। कुछ ऐसा इसका भाव समझ पड़ता है।

Any person who knows the divine knowledge of Brahmi Upanishad correctly, in the manner described herein, gets rid of his sins and becomes firmly established in boundless, blissful and most glorious Brahma. He becomes firmly established.

शान्ति पाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म

निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

पदच्छेद—ओम्, आप्यायन्तु, मम, अङ्गानि, वाक्, प्राणः, चक्षुः, श्रोत्रम्, अथो, बलम्, इन्द्रियाणि, च, सर्वाणि । सर्वं, ब्रह्म, औपनिषदम्, मा, अहम्, निराकुर्यां, मा, मा, ब्रह्म, निराकरोत्, अनिराकरणम्, मे, अस्तु, । तत् आत्मनि, निरते, ये, उपनिषत्सु धर्माः, ते मयि, सन्तु, ते, मयि, सन्तु ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अन्वय—ओम् मम वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रम्, बलम् इन्द्रियाणि अथो सर्वाणि च अङ्गानि आप्यायन्तु । सर्वं ब्रह्म औपनिषदम् अस्ति, अहं ब्रह्म मा निराकुर्यां ब्रह्म मा मा निराकरोत्, अनिराकरणं अस्तु मे अनिराकरणं अस्तु । तदा (तत्) आत्मनि निरते उपनिषत्सु ये धर्माः (सन्ति) ते (धर्माः) मयि सन्तु ते (धर्माः) मयि सन्तु ।

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
ॐ	ब्रह्म का नाम है	अङ्गानि	अङ्ग
मम	मेरे	आप्यायन्तु	परिपुष्ट हों यानी
वाक्	वाणी		मजबूत हो जांय
प्राणः	प्राण	सर्वं	सब
चक्षुः	आंख	ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा
श्रोत्रम्	कान	औपनिषदम्	उपनिषद् में प्रति-
बलम्	बल		पादित अर्थात् वर्णन
इन्द्रियाणि	इन्द्रियाँ		किया हुआ
अथो	तथा, साथ-साथ	अस्ति	है
सर्वाणि च	सब और	अहम्	मैं

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
ब्रह्म	परब्रह्म को	तत्	वह
मा	नहीं	आत्मनि	आत्मा में अर्थात्
निराकुर्याम्	निराकरण करूं		आत्मा के
	(भूलूं नहीं)	निरते	निरत होने पर
ब्रह्म	परब्रह्म परमात्मा	उपनिषत्सु	उपनिषदों में
मा (माम्)	मुझको	ये (धर्माः)	जो (धर्म)
मा	नहीं	(सन्ति)	(होते हैं)
निराकरोत्	अस्वीकार करे, यानी	ते (धर्माः)	वे (धर्म)
	परित्याग न करे	मयि	मुझमें
अनिराकरणं	अस्वीकार न करना	सन्तु	होवें
	परित्याग न करना	ते (धर्माः)	वे (धर्म)
मे	मेरा	मयि	मुझमें
अस्तु	होवे	सन्तु	होवे
तदा	तब		

भावार्थ—हमारे सभी अंग वाणी, प्राण, आँख, कान, शारीरिक, मानसिक, एवं बुद्धि आदि, बल, सारी इन्द्रियाँ ये सब पूर्ण रूप से परिपुष्ट हो जायँ। सभी उपनिषद् एक मत से परब्रह्म परमात्मा का प्रतिपादन करती हैं। भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि मैं उस परब्रह्म परमात्मा यानि आप का तिरस्कार न करूँ अर्थात् आप को भूल न जाऊं। प्रेम से आपका स्मरण करूँ। उसी प्रकार भगवन् ! आप भी मुझको भूल न जायँ। आप मेरा त्याग न करें। सारांश यह है कि मेरा किसी भी प्रकार निराकरण न होवे। कभी न होवे। तब उस परब्रह्म परमात्मा में चित्त के पूर्ण रूप से लग जाने पर तथा अपने आत्मा का सब वस्तुओं से वैराग्य हो जाने पर जिन धर्मों का वर्णन उपनिषदों में किया गया है वे सब मुझको प्राप्त हों, सभी मेरे अंग हो जायँ। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

व्याख्या—इस शान्ति पाठ में वाणी, प्राण, चक्षु और कान इन चारों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। फिर यह भी कहा गया है कि बल भी प्राप्त हो। सारांश यह है कि सभी इन्द्रियाँ अपने राजा मन के साथ परिपुष्ट हों। इतना ही नहीं, शरीर के सारे अंग परिपुष्ट हों। यहाँ पहले-पहल वाक् आया है। संसार में जितनी वस्तुयें हैं उनमें नाम और रूप ही प्रधान है। परन्तु 'रूप ज्ञान नहि नाम विहीना।' इस चौपाई के अनुसार नाम श्रेष्ठ है जो केवल वाणी के द्वारा लिया जा सकता है। इसलिए वाक् का प्रथम उल्लेख उचित है। बिना प्राण शक्ति के वाणी उच्चारण नहीं कर सकती। आँख के बिना रूप का ज्ञान नहीं हो सकता और जो संसार को नहीं देख सकता, जो जन्मान्ध है वह रूप का अनुमान भी नहीं कर सकता। कान के बिना गुरु के मुख से उपदेश का श्रवण नहीं हो सकता। शारीरिक बल के बिना मनुष्य कुछ भी काम नहीं कर सकता तथा किसी इन्द्रिय अथवा शरीर के किसी भी अंग में विकलता, असह्य वेदना होने पर भी कोई काम नहीं कर सकता। कोई साधना नहीं कर सकता। इस कारण से इस शान्ति पाठ का प्रथम विराम अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। दूसरे बिराम में 'सर्वं ब्रह्मोपनिषदम्' यह पद यह सूचित करता है कि ब्रह्म-ज्ञान पूर्ण रूप से उपनिषद्-ज्ञान पर निर्भर है। अतः प्राप्त हैं एवं उचित है। द्वितीय विराम के शेष अंश में भगवान् की सगुण उपासना का रूप दर्शाया गया है। भक्त और भगवान् में भेद है। भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है। इस बात की आवश्यकता दिखाई है। तीसरे विराम में भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि मेरा मन आप में पूर्ण रूप से लग जाय और ऐसा होने पर उपनिषदों में जिन-जिन धर्मों का वर्णन किया गया है, वे भी सब मुझे प्राप्त हों। इस शान्तिपाठ से ध्वनि यह निकलती है कि भगवान् से भक्त प्रार्थना करे। उसमें पूर्ण रूप से विश्वास एवं श्रद्धा हो कि भगवान् सभी इच्छाओं को पूर्ण करेंगे।

'आप्यायन्तु' अर्थात् पूर्ण रूप से परिपुष्ट हों यानि आँख, कान, वाणी इत्यादि में दिव्य शक्ति पर्यन्त सिद्धि प्राप्त हो अर्थात् दिव्य श्रवण, दिव्य दर्शन

इत्यादि की सिद्धियाँ प्राप्त हों। समाधि सविकल्प अवस्था में इन सब सिद्धियों की प्राप्ति होती है। यदि साधक उन सब सिद्धियों के उपभोग में लग गया तो पथभ्रष्ट हो गया। यदि इनका उपभोग न करके साधना करता रहा तो निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है। ऋतम्भरा बुद्धि प्राप्त होती है जिसके द्वारा वेदशास्त्र आदि धर्म-ग्रन्थों को उनके तात्त्विक अर्थ को जान करके संसार का सभी प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके परब्रह्म परमात्मा के यथार्थ रूप को जान सकता है। जिसने वैदिक धर्म-ग्रन्थों को नहीं जाना, जो संसार में दक्ष कुशल नहीं, वह परब्रह्म परमात्मा को नहीं जान सकता। अस्तु, वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र इनकी विशेषता और भी वैदिक ग्रन्थों से सिद्ध होती है। संध्योपासन में ऐसा मन्त्र आया है········ पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतं···········अर्थात् आँखों से १०० वर्ष तक देखें, १०० वर्ष तक जीवें, मरें नहीं, १०० वर्ष तक कान से सुनें और १०० वर्ष तक बोलने की शक्ति रहे। आँख, प्राण, कान और वाक् इन चारों का वर्णन इस मन्त्र में आया है। 'ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्र पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः'॥ इस मन्त्र में जोर इस बात पर दिया गया है कि कानों से 'भद्र' अर्थात् कल्याणसूचक शब्द सुनें तथा कल्याणमय रूप आँखों से देखें और वाणी के द्वारा आपकी स्तुति करें और सारे अंगों से जीवन-पर्यन्त आपकी सेवा करें। इन्द्रियों और सारे शरीर से दो प्रकार के कर्म हो सकते हैं—एक अच्छे और एक बुरे। बुरे कर्म पापमय होते हैं और अच्छे पुण्यमय होते हैं। अतः इनका प्रयोग केवल भगवान् के लिए ही किया जाय। भगवान् के प्रतिकूल न किया जाय। कानों से सुनना, आँखों से देखना और वाणी से स्तुति करना—यही तीन बातें कही गई हैं। मन और प्राण का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया। परन्तु केनोपनिषद् में पहले मन का ही वर्णन है। बिना मन के न तो कोई आँख से देख सकता है न कोई कानों से सुन सकता है। न कोई भगवान् की स्तुति ही कर सकता है। बिना प्राण-शक्ति

के मन भी कुछ नहीं कर सकता। अस्तु, प्राण और मन का समावेश समझ लेना चाहिए अर्थात् प्राण और मन इसमें मिले हुए हैं। यद्यपि अलग से नहीं कहे गए हैं। शुभम् भूयात्। कल्याण होवे ॥

May my limbs, speech, vital force, eyes, ears as also strength and all the organs become fully well-developed. Whatever is revealed in the Upanishads relates to Brahma. May I not deny Brahma and may not Brahma deny me, Let there be no spurning of me by Brahma and let there be no rejection of Brahma by me. May all the virtues that are laid down in the Upanishads repose in me who, being detached from the world, am engaged in the realisation of self. May they repose in me. May they repose in me.

Om peace ! Om peace !! Om peace !!!

हमारे महत्त्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रकाशन

जिनमें मूल पाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी टीका, भूमिका नोट्स एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री है।

अभिज्ञान शाकुन्तल	सुबोधचन्द्र पन्त
उत्तररामचरित	आनन्द स्वरूप
कादम्बरी (कथामुख)	रतिनाथ झा
काव्यदीपिका	परमेश्वरानन्द
किरातार्जुनीय (१-६ सर्ग)	जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
चन्द्रालोक	सुबोधचन्द्र पन्त
नागानन्द नाटक	संसारचन्द्र
नीतिशतक	जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
प्रतिमानाटक	श्रीधरानन्द शास्त्री
प्रसन्नराघव	रमाशंकर त्रिपाठी
बालचरित	कमलेशदत्त त्रिपाठी
भट्टिकाव्यम् (१-४ सर्ग)	रामअवध पाण्डेय
भट्टिकाव्यम् (५-८ सर्ग)	रामगोविन्द शुक्ल
मृच्छकटिकम्	रमाशंकर त्रिपाठी
मालविकाग्निमित्र	संसारचन्द्र
मेघदूत	संसारचन्द्र
रघुवंश (१-१९ सर्ग)	धारादत्त शास्त्री
रत्नावलीनाटिका	रमाशंकर त्रिपाठी
वृत्तरत्नाकर	श्रीधरानन्द शास्त्री
वेणीसंहार	रमाशंकर त्रिपाठी
शिशुपालवध (१-४ सर्ग)	जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
शुनःशेपोपाख्यान	सुषमा पांण्डेय
स्वप्नवासवदत्त	जयपाल विद्यालंकार
साहित्यदर्पण	शालिग्राम शास्त्री
सौन्दरनन्दकाव्य	सूर्यनारायण चौधरी
हितोपदेश-मित्रलाभ	विश्वनाथ शर्मा

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कलकत्ता, बंगलौर, वाराणसी, पुणे, पटना

मूल्य : रु० ३५